मुर्ग़ छाप हीरो

ज्ञानपीठ लोकोदय-ग्रन्थमाला
हिन्दी ग्रन्थाङ्क—१०५

मुर्ग़ छाप हीरो

केशवचन्द्र वर्मा

भारतीय ज्ञानपीठ • काशी

विषय-सूची

मुर्गा छाप हीरो

•

भूमिका

आप चाहें तो विना भूमिकाके ही मैं अपनी बात कह दूँ ! पर जब मैं भूमिकाकी बात करने चला तो बिसमिल्लाह ही ग़लत कर दूँ, ऐसा परम्पराने तो नहीं बताया पर प्रयोगके नामपर यह काम भले ही कर सकता हूँ। *आजकलके 'नये लेखक' अपनी हेकड़ीमें भूमिकाका महत्त्व* नहीं समझ रहे हैं। बहुतसे तो उसे अपनी किताबोंमें-से दूधकी मक्खीकी तरह निकाल फेंकते हैं ! इसीलिए अब यह ज़रूरत आ पड़ी है कि उन्हें भूमिकाका महत्त्व समझाया जाय। सब कहते हैं कि आज युग बदल गया है ! उसकी सीमाएँ, उसकी अर्गलाएँ, उसकी चेतनाएँ जाने कौन-कौन 'आएँ' बदल गई हैं—यहाँ तक कि युगका दिमाग़, पेट, अँतड़ी सब कुछ बदल गई है ! इसीलिए इस बदले हुए युग-मूल्योंमें भूमिका जैसे निरीह किन्तु शक्तिमान फ़ॉरमको सही दृष्टिसे देखना चाहिए। आज आपसे ज़्यादा आपकी भूमिकाका महत्त्व है। अगर आपकी भूमिका कमज़ोर है तो चाहे कितनी ही महत्त्वपूर्ण बात आप क्यों न कहने जा रहे हों, वह एकदम बेकार जायगी। कोई अपने कान एक मिनटको भी उधार देना पसन्द नहीं करेगा। और दूसरी तरफ़ यदि आपकी भूमिका लच्छेदार

हुई, काफ़ी ऊँचेसे आपने बातचीत की तो फिर अन्तमें पेश किये हुए कूड़े-को कोई नहीं देखता। कूड़ा भी उस परिप्रेक्ष्यमें 'मानव-मूल्य' और 'आस्था' जैसी संज्ञा पाकर अपना स्थान बना लेता है। इसीलिए तो इस बदले हुए युगके उन्नायक लोग कहते हैं कि कोई वस्तु अपने आपमें उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितनी यह कि वह किस परिप्रेक्ष्यमें कही जाती है ? और यह परिप्रेक्ष्य नामक चीज़ सिर्फ़ भूमिका ही बनाती है। तबलेके बोलमें इसे उठान बोलते हैं। उठानका रंग कच्चा न होना चाहिए। उठानसे लोगोंको चौंकानेका अच्छा काम लिया जा सकता है।

पुस्तकोंके लिए भूमिका उतनी ही ज़रूरी है जैसे कृशकाय चिमरखी पहलवानके लिए सूट और सूटके ऊपर ओवरकोट—जो उनकी सारी कमज़ोरियोंको छिपाकर लोगोंको सिर्फ़ ओवरकोटका कपड़ा और सिलाई देखकर उसकी प्रशंसा करनेके लिए मजबूर कर देती है। हाँ, कभी-कभी यह खतरा इतना बढ़ जाता है कि लोग आदमीको भूलकर सिर्फ़ ओवर-कोटकी ही चर्चा करते रह जाते हैं। विश्वास न हो तो आप 'हिन्दी-साहित्यकी भूमिका' और 'सूरसागरकी भूमिका' देखिए। देखते-देखते अपने आप एक किताब बन गई। आज इन्हीं ओवरकोटोंकी सिलाईकी प्रशंसा करते-करते कितने ही लोग स्वयंभू टेलराचार्य हो गये। बिना भूमिकाकी किताब माइक्रोफोनके बिना भाषण जैसा है। भूमिका उसका शृङ्गार है। पर आपका सौन्दर्यबोध बढ़ा हुआ होगा। सम्भव है मैं न छू पाऊँ। इसलिए उसका व्यावहारिक पक्ष बताऊँ। जितनी मोटी तगड़ी भूमिका होगी उतना ही उस पुस्तकका कलेवर बढ़ेगा, जितना कलेवर बढ़ेगा, उतना ही उसका मूल्य बढ़ेगा और जितना मूल्य बढ़ेगा उतनी ही आपकी जेब। आपको पता ही होगा कि बहुत-सी किताबें सिर्फ़ भूमिकाके नामपर बिकती हैं। किताबें बिकती हैं क्योंकि उसपर गुरुदेव रवि बाबूका ठप्पा लगा हुआ है, उसपर किसी मुख्य मन्त्रीकी छाप लगी हुई है। लेखकका नाम कवरपर है ही नहीं, सिर्फ़ प्रस्तावना लेखकका नाम है।

भूमिका लिखवानेसे कई लाभ हैं। मसलन–किताबका कोर्समें लगना, बिक्री बढ़ जाना, किताबकी ख्याति, लेखकका व्यक्तिगत लाभ, 'पर्सनल रिलेशन' बनना आदि। कोर्समें लगवानेके लिए या बिक्री बढ़ानेके लिए यदि भूमिका लिखवाना चाहें तो किसी मन्त्रीका पल्ला पकड़ें। किसी सोर्सका सहारा पाकर एक बार मन्त्री महोदयसे मिलें और फिर तब तक मिलते रहें जब तक वे आपको भूमिकापर हस्ताक्षर करके न दे दें। इस बहाने आपको उनसे कई बार मिलनेका अवसर मिलेगा और इस मेल-मुलाकातसे इतना लाभ तो होगा ही कि मन्त्री महोदय इतना ज़रूर जान लेंगे कि घसीटेलाल कवि हैं और जब मद्यनिषेधका कवि-सम्मेलन होगा तब आपको निमन्त्रित करवाना वे नहीं भूलेंगे—हो सकता है सभापति तक बना दें। उनका सार्टिफिकेट पाकर आपकी मनोविज्ञानपर लिखी हुई पुस्तक यदि पंचायत विभाग या कृषि विभाग द्वारा खरीद ली जाय तो आपको आश्चर्यचकित न होना चाहिए। स्वयं मन्त्री महोदयको भी यह सन्तोष बना रहेगा कि—

'राजनीतिमें आ जानेके कारण इधर बहुत दिनोंसे मुझे साहित्य अवलोकनेका समय नहीं मिलता। फिर भी साहित्य अच्छी चीज़ है और जो लोग इसमें लगे हैं वे अच्छा काम कर रहे हैं। मैं घसीटेलालजीकी कविताओंसे बहुत प्रभावित हुआ हूँ। इनकी कविताएँ युवकोंके लिए स्वास्थ्यप्रद होंगी ऐसा मेरा विश्वास है। मैं घसीटेलालजीके भविष्यकी कामना करता हूँ।'

और समझ लीजिए कि घसीटेलाल—यानी आपका भविष्य बन गया। (स्वास्थ्य विभागसे पाँच सौ कापीका आर्डर मिला हुआ समझिए!)

पर बहुतसे ऐसे लेखक हैं जो मन्त्रियोंसे भूमिका लिखवानेके सुझाव-पर ही बिगड़ खड़े होंगे। वे लेखक हैं और लेखकको ही सब कुछ मानना चाहते हैं। उनके लिए भी आजकल काफ़ी सुवर्ण अवसर है क्योंकि बहुतसे लेखकोंने अपना लिखना-पढ़ना बन्द करके सिर्फ़ भूमिका

लिखनेका धन्धा कर लिया है। सुना गया है वे भूमिका लिखनेकी कुछ फ़ीस लेकर भूमिका लिख देते हैं। जैसी फ़ीस तैसी भूमिका! चार लाइन-से चालीस पेज तककी भूमिका उनके पास रहती है। यह फ़ीस नकद न होकर कभी-कभी किताबोंके ही रूपमें होती है। (इस मामलेमें अपनी किताब देते हुए समझसे काम लेना चाहिए नहीं तो एक मास बाद वही किताब उनके नामसे छपी दिखाई पड़ सकती है! इसका भय इसलिए और भी है कि अब इन्होंने खुद लिखना-पढ़ना छोड़ दिया है!!) इनसे भूमिका लिखवानेके लिए आपको पचास चक्कर काटना पड़ जायगा और एहसानका भारी बोझ मुफ्तमें उठाना पड़ेगा। वैसे इन भूमिका लेखकोंमें से एकाधने अपने कामको बहुत हल्का कर लिया है। आप गये, आपका नाम पूछकर खाली जगहमें भर देंगे। जो हिस्से लागू न होंगे वे काट देंगे और भूमिका-फ़ार्म आपको सौंप देंगे। (ठीक उसी तरह जिस तरह बैंकसे वापस आये हुए चेकके साथ एक छपा हुआ फार्म लगा रहता है) भूमिकाके उस फार्मका एक नमूना आपको दे रहा हूँ—

मैं श्री। श्रीमती। कुमारी······की रचनाओंको बड़े प्रेमसे पढ़ता रहा हूँ। इन्होंने अपने नाटक···काव्यसंग्रह···उपन्यास···कहानी-संग्रह···निबन्ध-संग्रह···में मानव जीवनको बहुत निकटसे देखनेका प्रयास किया है। इनकी रचनाओंसे पता चलता है कि हिन्दीका भविष्य बहुत उज्ज्वल है।

(इसके नीचे 'नाटकका उद्‌भव और विकास' पर एक लेख। या 'भारतीय काव्यशास्त्र : एक दृष्टि' एक उड़नछू आलोचना। जैसी ज़रूरत हो वह टाँक कर बाक़ी हिस्सा निकाल दिया जा सकता है।)

अन्तमें मैं फिर कहूँगा कि श्री। श्रीमती। कुमारी······ने अपनी इस कृतिसे हिन्दी साहित्यको समृद्ध किया है। मैं इसका स्वागत करता हूँ।

·················

दिनांक·············

(हस्ताक्षर)

(डिग्री अगर कुछ हो)

अब अफ़लातूनसे लेकर घसीटेलाल तक अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति लेकर आ जायँ—सबका इसी फ़ार्ममें उद्धार हो जायगा। इस फ़ार्मके सहारे वे महान् भूमिकावादी लेखक हो सकते हैं क्योंकि दिन भरमें कम से कम पच्चीस किताबोंपर अपनी सम्मति दे सकते हैं और उसकी भूमिका लिख सकते हैं, और लेखकके उज्ज्वल भविष्यकी कामना कर सकते हैं। भूमिका लिखनेसे इन्कार करनेपर भी हर लेखक भूमिका लिखना बहुत पसन्द करता है। जो जितनी ही भूमिकाएँ लिखता है वह उतना ही बड़ा लेखक हो जाता है। और जो सिर्फ़ भूमिकाएँ ही लिखता है वह तो आचार्यकी कोटिमें आ जाता है।

पर हो सकता है कि आप किसीसे ऐसी भूमिका न लिखवाना पसन्द करें। खुद ही इस मैदानमें कूद पड़ें! वैसे यह 'आइडिया' भी बुरा नहीं है। आप कई नाम रख सकते हैं···'भूमिका'से लेकर 'दो शब्द' (चाहे कहें हज़ार शब्द) 'प्राक्कथन' (चाहे बादका कथन कुछ न हो) 'विज्ञापन' (जो सीलोन-रेडियो मार्का मात्र विज्ञापन हो और आप कहें इसे पढ़कर सुरैया गाना गाने लगी या राजकपूर अभिनय करने लगा) 'परिचय' (जिसमें आप किताबको छोड़ जीव जन्तु, चिड़िया, बन्दर, घड़ियाल किसीका परिचय दे सकते हैं) तक, आप जो चाहें रख लें और जैसा जी चाहे लिखें। इस तरहकी भूमिकामें आप अपने मनकी तमाम भड़ास निकाल सकते हैं—मसलन आप कह सकते हैं कि आप जैसे (धुरंधर ?) लेखकको किसीने इसलिए नहीं पूछा कि आप किसी गुटमें नहीं हैं और हिन्दीमें गुटवालोंका ज़ोर है। (फिर आप गुटवादपर एक लेख लिखें और कहें कि घसीटेलाल एक नया गुट बनाना चाहते हैं सब उसमें आ जाओ।) आप नाटककी किताबमें नई कविताको गाली दीजिए। उपन्यासकी भूमिकामें अपनी दूसरी किताबों (प्रकाशित या अप्रकाशित) की चर्चा कीजिए और कहिए कि किताबें ऐसी होनी चाहिए !! (अर्थात् जैसे घसीटेलालकी है)। जो मन आये लिखिए···कौन माईका लाल आपको लल-

कार सकता है ? बल्कि कहूँ कि अगर आप समझदार हैं और वेहया (दार) हैं यानी दूसरोंकी कुछ सुने बग़ैर अपनी लिखते जायँगे तो एक दिन वह आयगा जब आप देखेंगे कि ऊसरमें बोये हुए बबूलकी तरह उसकी लकड़ी आपके काम आ जायगी यानी उन भूमिकाओंका एक अलग संग्रह छपा हुआ पायँगे। और सहसा श्री घसोटेलाल एक पुष्ट निबन्ध लेखक माने जायँगे। न सिर्फ़ निबन्ध लेखक—बल्कि आप जोखम उठाने वाले लेखक हों—तो आँखोंमें धूल झोंककर अपनी आत्मकथा तक भूमिकामें लिख सकते हैं। सात सौ या आठ सौ गीतका संग्रह निकालिए और अपनी एवं अपनी मैडमकी ही चर्चा कीजिए। इस तरहकी आत्मकथा लिखनेका चांस आजकलके जीवनमें बहुत कम मिलता है जब तक आप एक भारी भरकम नेता न बन जायँ और जेलमें आपको इतना टाइम मिले कि आप अपनी आत्मकथा वहाँ लिख लें। (हाँ, उपन्यासके सहारे अपनी आत्म-कथा लिखनेकी आप सोचें तो बात और है।)

इसलिए तो कहता हूँ कि भूमिकामें बहुत 'स्कोप' है, बहुत संभावनाएँ हैं। आप चतुर लेखक हैं तो इसका सदुपयोग करेंगे।

मुर्गा छाप हीरो

"तो क्या उस्ताद तुमने नरगिससे खुद हाथ मिलाया था?"

"हाँ हाँ! हाथ ही नहीं मिलाया जी, हम लोग तो रोज़ साथ-साथ खाना खाते थे। नरगिस, गीताबाली, सुरइया सब के साथ रोज़ ही मिलना बैठना होता था। सबने हमसे कहा कि मास्टर, अगले फिल्ममें तुम्हारे ही साथ काम करनेको जी चाहता है। पर······"

"अच्छा उस्ताद, तुमने तो राजकपूर और अशोककुमारको भी देखा होगा?"

"देखा! और उनके ही साथ तो रोज़ कारमें घुमाई होती थी। बड़े मस्त हैं दोनों।" उस्ताद मोहन सिंहने फिर चारमीनारका एक कश लगाया।

जौनपुरकी सड़ककी एक पानकी दूकानपर बम्बई-रिटर्न-फिल्मी-दुनिया देखे उस्ताद मोहन सिंहके वचनामृत सुननेके लिए हमेशा दस पाँच आदमी इकट्ठा रहते और अपनी शंका-समाधान करते रहते। एक जिज्ञासुने फिर पूछा—

"तो उस्ताद, तुमने अशोककुमारकी पिक्चरमें काम नहीं किया?"

उस्तादने कहा—

"अशोक तो एकदम पीछे पड़ गया था। हाथ पकड़ लिया कि बम्बई-से जाने नहीं दूँगा पर—" साँस खींचकर एकदम ज़ोरसे 'कुकड़ूँ कूँ' कहा और चुप हो गये।

उस्तादने सिगरेटका एक कश लगाया और आँख बन्द कर ली। 'कुकड़ूँ कूँ' सुनते ही लोगोंने खिसकना शुरू कर दिया। कथा समाप्त होनेका रोज़ाना यही सिगनल था।

उस्ताद सिगरेटके धुएँके छल्ले उड़ा रहे थे। आँखें बन्द थीं। और 'कुड़क धुम्म' की आवाज़के साथ उनके दिमाग़के फिल्मी पर्देपर सीन बदल गया····।

× × ×

छः हफ्तेसे बम्बईमें चक्कर काटते हुए अब कमल मास्टरके सिर्फ़ पैरों तक में ही सनीचर नहीं रह गये थे। उसकी झलक उनके मुँहपर भी उतर आई थी। पर आज वह अपनी पूरी कोशिशसे सनीचरकी यह मन-हूस छाप उतार देना चाहते थे। पहिले वैसलीनकी मालिश हुई, पाउडर का हल्का छिड़काव और रगड़ाव हुआ, पतली कटार मार्का मूछोंपर बुझी हुई दियासलाईकी तीलीसे सान चढ़ाई, बालोंके एक छोटेसे छल्लेको आगे उलझा हुआ छोड़कर बाक़ी हिस्सेको पानी, वैसलीन और कंघेसे चिपकाया, खूँटीसे रंग बिरंगी तस्वीरों वाली बुशर्ट उतारकर कन्धेपर डाली, गरम पतलून चढ़ाई और कोठरीसे बाहर निकलकर मुँहमें चारमीनार दबाई तो कमल मास्टरको सारा संसार हेच दिखाई पड़ने लगा।

गलीसे निकलकर वे बस स्टापपर आकर खड़े हो गये।

कलाई घड़ीमें टाइम देखनेके लिए हाथ उठाया तो उनकी निगाहें अपने हाथके भद्दे गोदनेके अक्षरोंमें Ostad Mohansing (उस्ताद मोहनसिंह) पर ठहर गईं। कमल मास्टर मुसकुराये। जौनपुरके उस्ताद मोहनसिंह बम्बईके फिल्मी-दुनियाके लिए कमल मास्टर हो गये थे। फिर

भी छः हफ्ते तक इस कलात्मक नामका कोई स्पष्ट प्रभाव फ़िल्म कम्पनियों-पर न दिखाई पड़ा।

बसें तो कई आकर चली गईं पर मास्टरकी बस नहीं आई। पर्स निकालकर उन्होंने उसमेंसे अपना फोटो निकाला और देखा। वे सोच रहे थे कि फेल्ट कैप यदि न लगाते तो उनके बालोंकी ब्यूटी खिल जाती। इसी फोटोको उन्होंने फ़िल्म कम्पनियोंमें अपनी अर्जीके साथ-साथ नत्थी किया था। इसको वे जौनपुरसे खिंचवा कर लाये थे।

अपने ज़िलेमें उस्ताद मोहनसिंह अच्छे 'कसरती ज्वान' माने जाते थे। दूध मलाई खाते-पीते घरकी भारी भरकम काया, रोज़ सैकड़ोंमें डंड बैठक, हाकीकी टीमोंमें फुलबैक खेलनेवाले मोहनसिंहको नाटक और सिनेमाका भी बेहद शौक़ था। आमके बाग़ोंमें होनेवाले कस्बोंकी रहस-मंडलीके रिहर्सलोंके वह डाइरेक्टर रहा करते थे। रहस-मंडलीमें ही वे 'डाकू सुल्ताना' और 'कप्तान यंग' की लड़ाई दिखलाते थे, पूरनमल और उसकी सौतेली माँका रोमांस कराते थे और गानोंमें स्टेजपर 'डिरामा' बोला करते थे। क़स्बेमें पर्देदार नाटक भी उस्ताद मोहनसिंहकी ही पार्टीने पहिली बार दिखाया। उस्तादका ही यह कमाल था कि नाटकमें शेर और बकरी एक ही घाट पानी पीते थे—राणाप्रताप, मुग़लसम्राट् अक़बर, मानसिंह, बीरबल, जोधाबाई, भामाशाह और अबुलफज़लको एक लाइनमें खड़ा करवा कर वे ड्रामा शुरू होनेके पहिले हाथ जोड़कर कोरस गवाते थे—

वारी ऽऽ बलिहारीऽऽ
तेरे क़ुदरत की गुलकारीऽऽ।
चम चम चमके अपार माया
कैस (!) तुने आकाश बनाऽऽयाऽऽ
शमा जलाया, फ़र्श बिछायाऽ
बादल हिलमिल जल बरसाऽऽयाऽऽ

वारी ऽऽ बलिहारीऽऽ
तेरे क़ुदरत की गुलकारीऽऽ।

उनके यह कारनामे देखकर ही तमाम लोगोंने उन्हें सिनेमामें जाने की सलाह दी थी—कहा था 'सिनेमामें तो रूपया बरसता है।' 'जादु-इ-नगरी' 'जादु-इ-समसम' 'विजय का डंका' 'फौलादी जासूस' जैसे कई तमाशे देखकर उनके मनमें सहसा इतना आत्मविश्वास पैदा हुआ कि दो चार लोगोंसे अपने हुनरके बारेमें सर्टीफिकेट और सिफ़ारिशी चिट्ठियाँ लेकर वह सीधे बम्बई चले आये। चलते-चलते गुप्ता-फोटोग्राफ़रने उस्तादकी तीन फोटू उतार कर दे दी कि 'कभी राजकपूरकी तरह बन जाना तो अपने गुप्ताजीको भी बम्बई बुला लेना।'

अपनी फोटो देखकर कमल मास्टरको पूरा जौनपुर याद आ गया—"एक जौनपुर था जहाँ कलाकी कितनी क़दर होती थी और एक यह साली बम्बई है जहाँ टकेको भी कोई आदमीको नहीं पूछता। डाइरेक्टरी तो दरकिनार फिल्ममें एक्स्ट्राको कोई नहीं पूछता। आखिर अपनी तरफ़का आदमी ही काम आया। हेल्प न करता तो यह प्रोड्यूसर भी कांट्रैक्ट न देता। जब प्रोडक्शन शुरू करूँगा तो जौनपुरसे गुप्ताको ज़रूर बुलाऊँगा।"

कलसे उन्हें न्यू मूवीटोन साइन लिमिटेडकी 'शमशीरे-बग़दाद' में काम करना है। आज ही कमल मास्टर उर्फ़ उस्ताद मोहनसिंहने उस कांट्रैक्टपर दस्तख़त किया था। फिल्ममें काम शुरू करनेसे पहिले वे सिनेमाके अख़बारोंमें अपनी तस्वीर और अपना परिचय छपानेके लिए उत्सुक थे।

फोटोको उन्होंने पर्समें सँभालकर रख लिया। बसका ज़्यादा इन्तज़ार नहीं करना पड़ा। बस आई और उन्हें उसने ले जाकर मेरीनड्राइवपर छोड़ दिया। दो आनेकी 'भेल' लेकर खाते हुए मेरीन ड्राइवपर कुछ देर टहलकर वे सामनेकी इमारतके उस दरवाज़ेके खुलनेकी इन्तज़ार करते

रहे जिसमें अखबारका फिल्मी-संवाददाता रहता था। आज वे समुद्रकी तरफ़ नहीं बल्कि इमारतोंकी तरफ़ देख रहे थे····

"इसमें शायद नरगिस रहती है···उसमें लता रहती होगी···और उसमें ? उसमें भी कोई फिल्मी एक्टर रहता होगा। बड़ा पैसा है सबके पास···चार कांट्रैक्ट पूरे हो जायँ तो मैं यहीं फ्लैट लूँगा। अच्छी जगहमें रहो तो प्रोड्यूसर भी लम्बा कांट्रैक्ट देता है। डाइरेक्टर भी रोब मानता है।"

फिल्मी-संवाददाताका दरवाज़ा सहसा खुला देखकर कमल मास्टर हाथकी 'भेल' जल्दीसे मुँहमें डालकर उसी ओर लपके। उसे सब कुछ सौंपकर वह निश्चिन्त हो गये। गलीके ढाबेमें जाकर खाना खाया और सोनेके लिए अपनी कोठरीमें आकर टाँग पसारकर पड़ रहे। नींदके खर्राटोंमें वे देख रहे थे···

मैरीन ड्राइवमें उन्होंने दो फ्लैट ले रक्खे हैं। एक डॉज और एक ब्यूक गाड़ी सामने खड़ी है। फिल्मफेयर, फिल्म इण्डिया, स्क्रीन, सिनेमा और दूसरे अखबारोंमें उनके ड्राइङ्गरूम और बेडरूमके बड़े-बड़े फ़ुलपेज फोटो छप रहे हैं। कमल मास्टर अपने ड्राइंगरूममें एक बड़े मर्फी रेडियो सेटके पास पतलून और बनियाइन पहिने औंधे पड़े हैं और सामने एक किताब खुली पड़ी है। फ़ुलपेज चित्रके नीचे शीर्षक है···

"लोकप्रिय स्टण्टहीरो कमल मास्टर अपना खालीवक्त अध्ययनमें बिताते हैं।"

सबेरा होते मास्टरने देखा कि कोठरीमें कोई बदलाव नहीं हुआ था। पर बदलाव उनके मनमें था। आजसे कामपर जाना होगा। कैमरेके सामने खड़ा होना होगा। उन्होंने चटपट हजामत बनाई और बस-स्टापकी तरफ़ लपके।

कमल मास्टर काम करने लगे।

डाइरेक्टरके इशारोंपर वे इस पेड़से उस पेड़पर कूदने लगे, महलकी

सीढ़ियोंपर तलवार भाँजते हुए दुश्मनकी फ़ौजोंको एक ही लातसे मारकर गिराने लगे, नदीके किनारे गाती हुई छोकरी प्रेमिकाके पास ज़ँऽऽऽऽकी आवाज़ करते हुए पेड़की डाल पकड़कर टार्जनकी तरह उतरने लगे—जान जोखिमका रोमांस किया—पर उनकी तनख्वाह जहाँकी तहाँ बनी रही।

मास्टरकी परेशानी बढ़ रही थी। इस तरहसे भला वह कब तक मैरीन ड्राइवमें पहुँच सकते हैं। इधर-उधर लोगोंसे बातचीत की टोह ली और जब फिल्मकी सात हज़ार फिट शूटिंग हो चुकी—कहानीमें सिंहल द्वीपकी राजकुमारीसे नायक कमल मास्टरका जब पूरी तरहसे रोमांस चल रहा था, कमल मास्टरने एकाएक सत्याग्रह कर दिया।

दो दिन बीमारीका बहाना किये पड़े रहे। तीसरे दिन कहला दिया 'मैं न आऊँगा।' घरसे उठकर न गये। फिल्म कम्पनीकी मोटर उन्हें लेनेके लिए दौड़ने लगी। पर वह न उठे। सेठका मैनेजर खुद आया और किसी तरह वहाँ तक चलनेके लिए राजी करके साथ ले गया। मोटा भदभदा सेठ अपनी काया ही जैसी फैली हुई एक कुर्सीपर अधलेटा था। पूछा···

"कहो मास्टर? क्या बात है?"

पास ही बैठे हुए चापलूस फिल्म डाइरेक्टरने फ़ौरन बात पकड़ी—

"तुम्हारे विना फिल्म ठप पड़ी हुई है यार। जानते हो, हज़ारोंका रोज़ नुक़सान हो रहा है। सब स्टूडियो और कास्टका बेकार पैसा जा रहा है।"

मास्टरने कहा—

"सेठ···"

"हाँ, हाँ कहो भाई।" दोनों बोले।

"सेठ! कुछ और पैसे बढ़ाओ तो आगे काम होगा।"

ऐसे हीरो सेठ पहिले भी देख चुका था···

"अरे यार बस ? बढ़ेगा। पैसा तो बढ़ेगा ही। अब एकाध पिक्चर ये हो जाने दो। फिर अपने आप पैसा बढ़ेगा। ये भी क्या बात कही!"

पर कमल मास्टरके पास गुरुमन्त्र था कि सेठके सामने इतना झुकना ठीक नहीं। वे अपनी बातपर डटे रहे। घण्टे भर तक दोनों पक्ष अपनी ही बात घुमा-घुमा कर कहते रहे। सेठ खीझकर बोला...

"तुम्हारी पूरी पिक्चरका काण्ट्रैक्ट है। जा कैसे सकते हो?"

"नहीं। काण्ट्रैक्ट तो चार महीनेका था। तुम्हारी पिक्चर उसमें पूरी हो जाती तो हो जाती पर अब तो यह बढ़ रही है। पैसे बढ़ाओ तो आगे काम होगा।"

"तो जाने दो...पिक्चर साली यूँ ही रहेगी। तीस हज़ारका घाटा ही सही। पैसा तो बढ़ नहीं सकता मास्टर। फिर तो सभी कहेंगे कि पैसा बढ़ाओ। सेठका तो दिवाला निकल जायगा।" सेठने कहा।

अबकी डाइरेक्टर बोले....

"अच्छा तो मास्टर ठीक है। पिक्चर हम बनाते हैं। पिक्चर बनेगी और तुम्हारे बिना बनेगी। तुम हो किस फेरमें? तुम्हें मुर्गा बनाके न छोड़ा तो कहना। अब कम्पनीके दरवाज़ेपर न फटकना।"

कमल मास्टर उठकर चले आये। उन्हें पूरा यक़ीन था कि डाइरेक्टर और सेठ उन्हें फिर बुलायेंगे। बिना उनके फिल्म आगे नहीं बढ़ सकती।

निमंत्रणकी प्रतीक्षामें तीन महीने बीत गये। उन्होंने समझा काम ठप्प हो गया। मेरीन ड्राइवपर फिल्मी संवाददाता मास्टरसे पूछता—

"कहो भाई क्या हुआ?"

ये कहते....

"दूसरी कम्पनीज़से आफ़र आ रहे हैं। अभी रेस्ट कर रहा हूँ। देखिए कहाँ टेकअप करता हूँ।"

और एक दिन शामको जब वे मैरीन ड्राइवकी तरफ़ आ रहे थे, सामनेके पिक्चर हाउसमें बड़े भारी पोस्टरमें 'शमशीरे-अदादाद'का 'महान् उद्घाटन' दिखा। पोस्टरमें उनका नाम भी था। कुतूहल दब न सका। घुसपिल कर पहिले ही शोमें देखना चाहा। फिल्म शुरू हुई। वही कहानी—सब कुछ सात हजार फ़ीट तक बिलकुल वही जो उन्होंने किया था। उनकी रोमांस वाली दृश्यावली भी यथावत् चल रही थी। सहसा वे देखते हैं कि राजकुमारी जादूगरनी बन गई। उसने एकाएक हीरोको मुर्गा बनाकर अपने कमरेमें छोड़ दिया। मास्टरका सिर घूम रहा था। पूरी पिक्चर भर वह मुर्गा हीरोइनके साथ रोमांस करता रहा। हीरोइन उसे दुलारती रही, दाने चुगाती रही और अन्तमें जब उसने अपने बापको मार डाला तो मुर्गेको फिरसे कमलमास्टरके रूपमें बदल दिया। मुर्गा यानी नायक हँसकर गाने लगा। मास्टरका सिर फिर भन्नाया वह सोच रहे थे कि यह गै कहाँसे आ गया। पर उस गानेने उनका भ्रम दूर कर दिया। ये वही शाट्स थे जो राजकुमारीसे पहिली मुलाक़ातके वक्त लिये गये थे!! नये फिल्मी फैशनके अनुसार वही पुराना गाना दुहरा कर फिल्म खत्म हो गई थी।

वह उठ कर बाहर निकल आये। उन्हें अपने चारों तरफ़ चलने वाले लोग मुर्गोंकी एक बड़ी भारी भीड़की तरह दिखने लगे। आँखोंके सामने अनन्त मुर्गे फड़फड़ा रहे थे और कानोंमें 'कुकड़ूँ कूँ' गूँज रही थी। मैरीन ड्राइव और चौपाटीपरसे निकले तो लोगोंने पीछेसे 'कुकड़ूँ कूँ' की आवाज़ें लगाईं। फ़िल्मी दुनियामें उनका मार्केट एकदम गड़बड़ हो गया। कम्पनियोंमें लोग 'मुर्गा छाप हीरो' कह कर उनके बारेमें बातें करने लगे। घबड़ाहटमें जौनपुरका टिकट लिया और वापस चले आये।

× × ×

'कुड़कधुम्म'की आवाज़ फिर हुई और सीन पलट गया।

सिगरेट बुझ चुकी थी। नई सिगरेट जलानेके लिए उस्तादने आँख खोली तो जिज्ञासुओंका नया ग्रुप सामने था। उनकी शंकाओंका समाधान करते हुए वे कह रहे थे····

"अरे पृथ्वीराज! पृथ्वीराज तो हमसे कहते थे कि जौनपुरमें तुम एक नाटक कम्पनी खोल दो····मैं खुद तुम्हारे डाइरेक्शनमें काम करना चाहता हूं। मैं यहीं एक रंगशालाकी स्कीम चलाने वाला हूँ। तो बात यह है राजकपूर और उनका सारा परिवार भी जौनपुरमें····"

गोभीका फूल

आप बाबू हनुमानप्रसादको नहीं पहचानते होंगे, पर बाज़ारके सभी कुँजड़े उन्हें अच्छी तरहसे जानते-बूझते हैं। सारी साग-सब्ज़ी वे बाज़ारसे रोज़ खरीदकर ले आते हैं। हरी धनियाँकी गड्डी पैसे-पैसे या दो पैसेकी तीन लेना, हरी प्याज़के साथ-साथ हरी मिर्चें भी अपनी टोकरीमें डलवा लेना, शलजमको पत्ते तुड़वाकर तुलवानेका आग्रह, आलू छाँट-छाँटकर चढ़वाना और सड़ा-कुम्हड़ा दूसरे दिन कटा हुआ वापस करना, अरवी धुलवाकर मिट्टी हटाकर लेना—आदि अनेक ऐसी बातें हैं जिनके कारण तरकारी मंडीका हर कुँजड़ा उन्हें पहिचानता है। ऊपरसे सब कुँजड़े उन्हें देखकर 'आइए बाबूजी' का नारा लगाते हैं, पर भीतरसे कोई नहीं चाहता कि वे उसकी दूकानपर ही उस दिनके बाज़ारका व्रत तोड़ें। क्योंकि बहुत देर तक उसे यह हिसाब लगाना पड़ता है कि घाटेमें आख़िर कौन रहा!

हनुमानप्रसादजीको हरी सब्ज़ीका मर्ज़ है। सारे संसारमें यदि किसी वस्तुको वे आदि कारण मानते हैं तो वह है—'हरी सब्ज़ी'। किसी बात-पर आप उनसे बात चलायें, पर अन्तमें इसी विश्वासके साथ उठेंगे कि

संयुक्त राष्ट्र संघमें कोरिया या चीनका मसला सिर्फ़ हरी साग-सब्ज़ीकी कमीके कारण अटका पड़ा है। किस सब्ज़ीमें कितने विटामिन होते हैं, कितना लोहा, कितना चूना, कितना कत्था, कितनी लकड़ी, कितना ईंटा, गारा वग़ैरह होता है—इसका जैसा विशद ज्ञान उनको था, वैसा किसी पोस्ट-मास्टरको अब तक निकली हुई टिकटोंके बारेमें भी न होगा। हनुमानप्रसादजीको ताजमहलका 'रिप्लिका' भेंट कीजिए तो वे बुरा मान सकते हैं, पर इसकी बजाय यदि आप उन्हें एक झाबा सोवा मेथीका साग भेंट कर दें तो आप उनके सुहृद् मित्र माने जा सकते हैं। सुनते हैं कि शादीके अवसरपर तो उन्हें इतनी साग-सब्ज़ी भेंटमें मिली थी कि तरकारी मंडीवाले महीनेभर उनकी सूरत देखनेको तरस गये। किसीको कहीं बाहर आते-जाते देखते तो मौसमी तरकारीकी फ़रमाइश वे ज़रूर कर देते थे।

शामतके मारे मेरे मुँहसे उस दिन निकल पड़ा कि मैं लखनऊ जा रहा हूँ। छूटते ही बाबू हनुमानप्रसाद बोले—"अरे भई वर्मा साहब, आप *लखनऊ जा रहे हैं तो हमारे लिए चार फूल गोभी लेते आइएगा। अभी* यहाँ गोभीका अच्छा फूल मिलता नहीं। सुना है कि लखनऊमें दो-दो आनेमें अच्छे फूल मिल जाते हैं।"

मैंने 'हाँ' या 'ना' कहा हो इसके पहिले ही उन्होंने अठन्नी मेरे हाथमें रख दी और मुझे अकेलेमें ले जाकर बोले—

"देखिए वर्माजी, पता नहीं आपने कभी तरकारी सब्ज़ी ख़रीदी है कि नहीं? फूल ज़रा गँठा हुआ लीजिएगा। बिखरा हुआ फूल ज़रा जल्दी ख़राब हो जाता है। और देखिए, उसपर झाँईं पड़ जाती है, वह न रहे। बहुत-से गोभीवाले पत्ता निकाल लेते हैं, सो पत्ता न निकालने पावें। पूरी गोभी लीजिएगा। पत्तेमें जो कैलोरीज़ होती हैं, वह फूलमें तो होती ही नहीं। पत्तोंके डंठलका अचार बड़ा अच्छा होता है। उसकी सब्ज़ी तो आपने खाई ही न होगी। लौट आइए, तो खिलाऊँ। ज़रा-सा

मद्धिम आँचपर पावभर पानीमें उबालकर नमक-मिर्च डालकर खाइए, तो देखिए लाल-लाल कल्ले निकल आयेंगे।"

वे हर सब्ज़ीके बारेमें इतना कुछ कह सकते थे। मैं इसलिए चुप था। वे साँस लेकर फिर बोले—"अच्छा सुनिए, फूलमें कभी-कभी छोटे-छोटे कीड़े लग जाते हैं। उसे झड़वाकर लीजिएगा। पानीमें भीगा हुआ फूल न लीजिएगा। बड़ी जल्दी खराब हो जाता है। अच्छे गोभीके फूलमें, कच्चा हो तो भी विटामिन डी० ए० बी० काफ़ी अच्छा रहता है...."

मैंने उन्हें याद दिलाया कि यदि मैं गोभीके फूलका पूरा माहात्म्य सुनकर गया, तो गाड़ी छूटेगी, नौकरी छूटेगी और गोभीका फूल भी छूट जायगा। सबपर संकटकी बात सुनकर हनुमानप्रसादने मुझे छोड़ दिया।

लखनऊमें हजरतगंज, सिनेमा, नाटक, नुमाइश, काफ़ी-हाऊस—सब कुछ छोड़कर मैं तरकारी मंडीमें घुसा। वे तीन आनेसे नीचे देनेको तैयार न थे, पर मुझे तो दो आनेवाला ही फूल चाहिए था—पूरे पत्ते-वाला, जिसके डंठलका अचार बन सके, जिसके खानेसे लाल-लाल कल्ले निकल आवें। लौटनेका वक्त होने आया। पर मंडीवालोंने दो आनेपर उतरनेके लिए हामी न भरी। हारकर तीन-तीन आने गोभीके फूल खरीदे। चार फूल उनके लिए और सोचा अगर ये इतने नायाब हैं, तो दो-चार अपने लिए भी ले लूँ।

प्लेटफ़ार्मपर हाथमें एक अदद खूबसूरत अटैचीके साथ एक झाबा गोभीके फूल लेकर सफ़र करनेवाला मैं अपने ढंगका अकेला ही मुसाफ़िर दिखाई पड़ रहा था। टी० टी० आई० दो बार पाससे गुजरा। मुझसे नहीं, पर कुलीसे पूछ गया कि सामान बुक करवा लिया है या नहीं? दो एक परिचित चेहरे दिखे, बोले—"कहिए दावत कब है?" संजीदगीसे जवाब देता हुआ मैं प्लेटफ़ार्मपर बढ़ती हुई भीड़ और अपने गोभीके झाबेको देख रहा था। कुलीसे बार-बार दिलासा माँग रहा था। कुली

चढ़ानेका आश्वासन दे रहा था पर एक रुपया इनाम चाहता था। मैं चाहता था कि गाड़ी आ जानेपर 'हाँ' 'ना' करूँ।

गाड़ी आई। ठसाठस भरी हुई। मेल। मारामारीका सीन! गाड़ीवालों और बेगाड़ी वालोंमें वर्ग संघर्ष। अन्ततः दृश्यमें कुछ शान्ति आई। धीरे-धीरे लोग पानी लेनेके लिए डिब्बेसे बाहर निकले। मेरे कुलीने 'अब न चूक चौहान' की तरह मुझे ललकारा। मैं भीतर घुसने लगा। भीतरवाले मुझे दूसरे डिब्बेमें खाली जगहके बारेमें अतिरिक्त जानकारीके साथ रेलवेके सारे क़ानून एक-साथ समझानेको तुल गये। पर 'हया' नामक वस्तु मैं प्लेटफ़ार्मपर छोड़कर ही डिब्बेके भीतर घुसा था। भीतर घुसते ही गोभीके फूलोंकी चिन्ता हुई। झाबा पूरा भीतर नहीं आ सकता था। गोभीके फूल धीरे-धीरे करके भीतर आ रहे थे। आखिरी इंस्टालमेंट-में दो फूल प्लेटफ़ार्मसे खिसककर डिब्बेके नीचे पटरीपर पहुँच गये। झाबा भीतरकर लेनेके बाद मैं कुलीपर बिगड़ने लगा। कुली इनाम माँगनेपर अटका हुआ था और मैं गिरी हुई गोभीका दाम। तू-तू, मैं-मैं बढ़ने लगी। दोनों अपनी-अपनी भाषामें एक-दूसरेको ऊँच-नीच कह रहे थे। अन्तमें समस्याका शान्तिपूर्ण हल निकला अर्थात् मैंने चारकी जगह छः आनेमें छुट्टी पाई।

दूसरेके सामानको लोष्ठवत् देखनेके लिए अपनी परम्परामें बहुत दिनोंसे आग्रह है। गाड़ीके भीतर, जब तक उठा ले जानेकी सुविधा न हो, हर आदमी दूसरेका सामान ठीक इसी तरह देखता है। एक स्वर कहता था—"साहब उधर ले जाइए न"। दूसरा बोलता—"बेंचके नीचे कर दीजिए, बेंचके"। तीसरा ऊपर ले जानेका सुझाव देता। अगर जगह होती तो डिब्बेके सभी लोगोंका सुझाव एकके बाद दीगरे पूरा कर देता। सुझाव बहुतेरे आये, पर कोई भी अपनी जगहसे तिलभर हिलनेके लिए तैयार न था, इसलिए निशस्त्रीकरणकी तरह गोभीके फूलोंकी भी समस्या ज्यों-की-त्यों थी। गोभीके फूलोंका झाबा वहीं नीचे पड़ा रहा। स्टेशनोंपर

गाड़ी रुकती रही और लोग उसमें सबके मना करनेपर भी उसी तरह घुसते रहे जिस तरह मैं घुसा था। मेरा अकेला कण्ठ डिब्बा खुलते ही मुझे सुनाई पड़ता था—"बचाइएगा, देखिएगा,....हाँ-हाँ...उधर नहीं। इधर गोभी है, गोभी। अरे साहब, यह बंडल उधर डालिए, इधर गोभी है... अरे ट्रंक उधर ले जाओ जी...

पर जब आदमी जनता हो जाता है, तो कौन किसकी सुनता है। सो मेरी भी किसीने न सुनी।

जब तक इलाहाबाद स्टेशन न आ गया, मैं अपने गोभीके झाबेको जी भर देख भी नहीं पाया। भीड़ उसे छापे रही। इलाहाबाद आनेपर ही मैंने उसे किसी क़दर देखा। गँठे हुए पत्तेदार गोभीके फूल जनताकी इतनी लातें खा चुके थे कि उन्हें हारे हुए उम्मेदवारकी तरह पहिचानना कठिन लग रहा था।

इतने हमलोंके बाद भी कितने विटामिन उनमें शेष बचे हैं, यह मैं उन्हें बाबू हनुमानप्रसाद तक पहुँचाकर मालूम करना चाहता था। पर हिम्मत नहीं पड़ी। यहींके बाज़ारसे पाँच-पाँच आनेके फूल ख़रीदकर, लखनऊके कहकर, उन्हें दे आया हूँ और उसके बदलेमें लखनऊमें मिलने वाली सस्ती तरकारीपर उनका एक सारगर्भित भाषण सुनकर अभी लौटा हूँ।

चूक बनाम सिद्धान्त

मेरे एक मित्रका कहना है कि—

Do a mistake and stick to it till it becomes a *Principle.*

मतलब कि अगर चूक हो जाय तो फिर उसपर दृढ़ हो जाइए और तब तक उसी बातको दुहराते जाइए जब तक कि आपकी चूक एक सिद्धान्तका रूप नहीं ग्रहण कर लेती। यह उनका आज़माया हुआ नुस्खा है। हो सकता है कि इस नियमको मानकर चलनेमें कुछ दिन आपको जनताके बीच 'बेहया' और 'बेशर्म' कह कर पुकारा जाय। पर आप अपने जीवनमें वह दिन दूर न समझिएगा जब आपको ही लोग हाथजोड़ दंडवत् करेंगे, आप मुसकरायेंगे और वे बाहर कहते फिरेंगे—'अपने सिद्धान्तपर अटल रहनेवाले आज कल बिरले मिलेंगे। कुछ कहो, पर अपनी बातपर अटल रहते हैं महराज।' और फिर आपके जीवनकी एक ही नहीं अनेक चूकोंकी खोज होगी, उसमें अपने जो एटीट्यूट लिया होगा, जो आपकी जीवनदृष्टि रही होगी, उसके बारेमें लोग अपने

भाषणोंमें ज़िक्र करेंगे, (आपके भाग्यने साथ दिया तो) लोग अपनी किताबोंमें उसका उल्लेख करेंगे और धीरे-धीरे एक दिन आप संसारके महान् पुरुषोंमें गिने जाने लगेंगे। पर यह सब तभी हो सकता है जब आप अपनी चूकको, चूक नहीं बल्कि अपने सिद्धान्तोंके अन्तर्गत किया हुआ एक महान् कार्य कहें—चाहे उसे आप भीतरी मनसे मानें या न मानें।

मित्रकी सलाह मुझे अक्सर वक़्त-बे-वक़्त काम देती रही है। ग़लतियाँ करके उनको जस्टीफ़ाई कर ले जाना, उन्हें अपने पूर्वनियोजित कार्योंका एक अंश बताना यह बहुत बार मुझे शर्मिन्दगीसे बचाता रहा है।

जब मैंने नौकरी करनेके लिए पहिले दिन दफ्तरमें पैर रक्खा तो मेरी अन्तरात्माने बहुत धिक्कारा। गेटपर ही मुझे लगा कि जैसे बुद्ध ईसा और सुक़रातकी आत्माएँ टहल रही हैं और कह रही हैं कि 'महान् बननेके लिए नौकरीका सहारा बिलकुल बेकार है। ऐसे फाटकोंपर हम लोग इसीलिए पहरा देते हैं कि तेरे जैसे पथभ्रष्ट लोगोंको बचा सकें। ऊपर चढ़ना है तो कुछ और काम करो। जन-सेवा करो, चनाजोर-गरम बेचो, खोंचा लगाओ, सिनेमामें जाकर काम करो, जूतेमें पालिश लगानेका धन्धा करो····पर इस फाटकके भीतर क़दम न रखना। याद रक्खो बच्चू। इसके भीतर जो गया वह फिर लौटके नहीं आया। निकला भी तो पचपन या साठ साल पूरा करके ही निकला और निकलते ही फिर उसीमें दूसरे दरवाज़ेसे घुसनेके लिए आतुर रहता है। आदमी कभी बढ़ नहीं पाता, कुर्सी बढ़ जाती है, वह उसीमें समाता चला जाता है। इसलिए ऐ मूरख तू चेत। निकल जा। अभी तेरे परमें कुछ दम है। नहीं तो देख—यही चनाजोर-वाले, यही पालिश वाले तुम्हें नौकर कहेंगे। तू चाहे तो मालिक बन और चाहे तो नौकर बन।'

मैं इतने महान् वचनोंको सुनकर घबड़ाया। कहीं एकाएक आकाशवाणी हो तो यूँ भी डर लगता है फिर इसमें तो साफ़ डराने व धमकाने-

की भी कोशिश की गयी थी। जब मैं घबड़ाकर गेटसे हटकर पीछेकी तरफ़ भागनेको ही था, उसी समय मुझे अपने मित्रकी सलाह याद आई। मैं गेटके भीतर क़दम रख चुका था। अब पीछे लौटना अपने सिद्धान्तको ही चुनौती देना था। तत्काल (Do a mistake and stick to it) "ग़लती कर और डट जा' सिद्धान्तका स्मरण किया और बोला—

"आपकी सहायता और सलाहके लिए मैं बहुत आभारी हूँ। पर आपको भ्रम हो गया है। मैं पथभ्रष्ट नहीं हूँ। यह तो मेरा चिरपरिचित मार्ग है। न जाने कबसे मैं इस मार्गपर शबरीकी तरह आँख लगाये खड़ा था, प्रभु। आप सबने इन्द्रके सिंहासनकी बातें सुनी होंगी—अगर अब तक देखा न हो तो आइए, इस लक्ष्मण-रेखाको पार कीजिए, तब आप उसका अनन्त तेज़ देखें। यही वह स्थल है जहाँ जनसेवी पहिले अपनी नाक रगड़ते हैं, यही वह स्थल है जहाँ चना-जोर-गरम और पालिशवाले एक कृपादृष्टि पानेको तरसते हुए घूमते हैं। यह जो आप टूटी-फूटी कुर्सियाँ देख रहे हैं इनकी सामर्थ्य आप यूँ नहीं सोच सकते। ऋषिमुनियोंकी तरह ऊपरसे कितनी ही साधारण जचें पर इनमें अपार शक्ति और तेज़ है। काश! आज आपका एक काग़ज़ फँसा होता तब आप मुझे भाषण न देकर उस कुर्सीके आस-पास मँडराते। आप तब बिना कहे ही यह समझ जाते कि इस कुर्सीसे जो काग़ज़ चलेगा वह आपका भाग्य-विधाता बनेगा। यह कुर्सी चाहे तो आपको पन्द्रह-बीस दिन तक दौड़ाये और फिर भी आपका काम पूरा न करके दे। यही कुर्सी चाहे और आपकी भावना, फलफूल भोग पाकर प्रसन्न हो जाय तो एक क्षणमें वरदानकी तरह आपपर अनन्त विभूतियाँ उतरने लगें। अटका हुआ बिल पास हो जाय, नया शर्तनामा मिल जाय, लड़के-वालोंको खाने कमानेका डौल हो जाय, नया घर खड़ा करनेके लिए कर्ज़ मिल जाय, सीमेंट मिल जाय, या नया घर ही मिल जाय, ऐसी जगह मिल जाय जहाँ कपड़े लत्ते और खाने-पीनेका आटोमैटिक (स्वयं) प्रबन्ध होता हो—आदि न जाने

कितनी सुविधाएँ यह कुर्सी आपको दिला दे कि आप चकित मुदित और चित्त हो जाँय। पर इसके एक भ्रूभंगपर यह सभी चीज़ें छिन सकती हैं—हो सकता है कि आप एक महान् योग्यसे महान् मूर्ख घोषित हो जाँय, घर जायदाद कुर्क हो जाय; और आप जनहितको ध्यानमें रखते हुए ऐसी जगहमें भेज दिये जाँय जहाँ आदमी तो क्या जानवर भी शायद ही पहुँच पाये। तो सुना महाप्रभु! आपकी बात हमें बिलकुल मान्य होती पर युग बदल गया है और युगने ही ईश्वरको बदल दिया है। अब इस नये युगकी दैवी-परमशक्ति यही कुर्सी है—इसीको पानेके लिए आजके देव, नर, किन्नर गन्धर्व, यक्ष, राक्षस सभीमें संघर्ष मचा हुआ है। जो इसे पा जाता है वह स्वयंसिद्ध नियमके अनुसार नररत्न अथवा देवताकी कोटिमें आ जाता है। शेष लोग उसे उसके सिंहासनसे हटाकर नीचे लानेका यत्न करते हैं और आदि शक्ति कुर्सीसे अपना विरोध प्रकट करते हैं और देवस्वरूपा यह कुर्सी फाइलोंके अनन्त बाणोंसे उन विरोधियोंको नीचा दिखाती हुई एकछत्र राज्य कर रही है। इसलिए हे देव! सच पूछिए तो मैं तो उसी अनादि शक्तिका एक अंश होने जा रहा हूँ। आधुनिक ब्रह्ममें ही लीन होने जा रहा हूँ। आप मुझे ऐसे क्यों रोक रहे हैं?" वे मेरी बातोंको सिर झुकाये सुनते रहे फिर चले गये।

मेरी आँखोंके सामनेसे धुन्ध हट गया। अपने ही तर्कोंसे मैंने उस कुहरेको काट डाला। सामने साफ़ रास्ता देख मैंने दफ्तरके भीतर पाँव रख दिये।

तबसे न जाने कितने साल बीत गये। परमशक्ति कुर्सीकी चूँ-चूँ चरमररर सुनते-सुनते कान पक गये है। फाइलें, चपरासी, बड़े बाबू, छोटे साहब, बड़े साहब और यस-सरके बीच आतिशबाज़ीकी चर्खीकी तरह नाच रहा हूँ। मुझे पता नहीं चलता कि कुर्सी मुझसे चिपक गई है या कि मैं ही कुछ कुर्सीके प्रति····। पर वह न मुझे छोड़ती है और न मेरा मन ही उससे अलग जानेको होता है। दस बजेसे रातके सात बजे

तक वह हर क्षण मुझे इस बातकी याद दिलाती रहती है कि सामने पड़े कागज़पर मैं चाहूँ तो ऐसा नोट लिख दूँ कि ये सारा तमाशा ही उलट जाय। पर ये जानेगा कौन कि नोट मैंने लिखा था। नाम तो 'हेड' का होगा। और हेड भी क्या—छपेगा तो किसी मन्त्रीके नामसे। उस दिन चेत जाता तो ज़िन्दगीमें सिर्फ़ कुर्सी ही बनकर न रह जाता।

पर ओह! देखिए मैं भूल गया। अपना सिद्धान्त ही भूल गया। अपने उठे क़दमोंको मैंने कभी ग़लत कहा ही नहीं। और ख़ैर, ये तो आप भी कहेंगे कि इतने बड़े संसारमें जहाँ चींटी तकका महत्त्व है, कुर्सी तो अपने आपमें महत्त्वपूर्ण है ही। मुझे अपनी बातोंका इतना विश्वास है कि मेरे तर्क सुननेके बाद उन महान् आत्माओंको भी यह दुःख व्यापा होगा कि उन्होंने नौकरी क्यों नहीं की। ताज्जुब नहीं वे लोग भी किसी दफ्तरमें नौकरीके चक्करमें अब घूम रहे हों। आपको अगर दिख जायँ तो उन्हें बता दीजिएगा कि मेरे बहकावेमें न आयँ।

चार कर्मलेख और चार फल

§ गीता डायरीका एक पृष्ठ

नगरमें सर्वत्र मँहगाईका प्रसार दृष्टिगोचर होता है। तरकारी जैसे पदार्थ भी इस सर्वत्र व्याप्त मँहगाईसे मुक्ति नहीं पा सके हैं। 'अरिवीय' (अरवी) तक दो आना प्रति सेर हो गई है। तरकारी-विक्रेता (कुँजड़े) मानवको मूर्ख समझ ठग लेते हैं। आज मैंने एकसे अल्लुका (आलू) क्रय की। मुद्रा भी अधिक देनी पड़ी तथा इनका जब 'क्षौरकर्म' किया गया तो उनमेंसे अर्धांश गलितं-पलितं स्थितिमें निकलीं। आज 'क्षीरा' (खीरा) क्रय करनेके विचारसे गया था। उदरके पथरी रोगके लिए क्षीरा तो रामवाण है। शोथके लिए तो बहुत लाभदायक है। नुक्कड़ पर बैठने वाली महिला-तरकारी-विक्रेता (कुँजड़िन) अपने उद्यानमें स्यात् क्षीरा उत्पादन करती है। पर इस वर्ष वह अभी तक क्षीरा नहीं लाई। मैं प्रति दिन उससे क्षीराके विषयमें जिज्ञासा करता हूँ। किन्तु वह एक नारी-सुलभ-सरस-मुसकानसे मेरी बात टाल जाती है। यदि क्षीरा क्रय

करना होगा तो उसीके पास क्रय करना होगा क्योंकि हीराकी शुद्धताका प्रमाण इतर स्थानपर मिलना कठिन है ।

लिखने वालेका नाम

पं० रामधीनलाल दुबे

पेशा

खैराती दवाखानेमें कम्पाउण्डर ।

ब्रजभाषामें यदाकदा छंद

एवं

खड़ी बोलीमें इतिवृत्तात्मक काव्य-सर्जना ।

फिर भी समय बच जानेपर…

राजनीतिमें भाग लेना : नेताओंके भाषणोंमें जनता

को बैठानेका काम करना ।

किस्सा : (दूबेजी रोज़ तरकारी लेने जाते थे । और एक कुंजड़िनके व्यवहारसे बहुत प्रभावित थे ।]

●

§ चिकने नीले कागज़की कापीका एक पृष्ठ

न जाने कौनसे स्वर हैं जो कलसे मेरे प्राणोंको आन्दोलित कर रहे हैं ! किस अनन्त मधुरिमाने मेरे हृदयकी पुलकनोंको स्पर्श कर लिया है ? ये किसका आग्रह है कि मेरा मन बार-बार उसी उपवन (पार्क) की ओर आकर्षित हो रहा है ? ये किसके इंगितोंपर उपवनके द्रुमदल-किसलय नृत्यित मुद्राओंमें झूमने लगे हैं ? किस सप्तपर्णी आभासे सारा प्रांतर उद्भासित हो उठा है ? मुझे सहज ही अनुभव हो रहा है कि मैं उन स्वरोंके साथ अपना स्वर जोड़ सकूँगा…मेरी दिशा मुझे मिल गई है । मुझे अपनी गतिको उसीकी गतिसे मिलाना होगा ।

लिखनेवालेका नाम

विजयेश्वर 'अनन्त'

पेशा

एक हिन्दी अखबारमें प्रूफ़रीडरी !

हर स्थानीय कवि-सम्मेलनके प्रमुख रहस्यवादी कवि ।

क़िस्सा : [अनन्तजी एक दिन एक पार्कमें बैठे हुए थे कि एक सुन्दर महिला कुछ गुनगुनाती हुई उधरसे निकली और उसने फूलोंका एक गुच्छा तोड़कर अपने जूड़ेमें लगा लिया । अनन्तजी उसको निहारते रहे । वह रिक्शेपर बैठकर चली गई । ये पैदल थे । इन्होंने रास्ता देख लिया था । अब किसी दूसरे रिक्शेकी तलाश में खड़े थे ।]

●

§ यूनिवर्सिटीमें अदा की गई फ़ीसकी रसीदका एक बैक पेज (पिछला पन्ना)

ये जीवनकी लम्बी-लम्बी अवधियाँ क्या केवल विरहकी घड़ियोंसे ही निर्मित हुई हैं ? क्या चिर-विरह ही इन प्राणोंका अन्त है ? मेरे प्राणोंके स्फुलिंग क्यों अचानक ही जगमगाने लगे हैं ? मुझे अपने प्रियकी स्पष्ट आभा दीख रही है । पर वह आभा हर क्षण सामने नहीं रहने पाती । वायुकी लहरोंसे टकराकर वह छवि आँखोंमें ही टूट जाती है । मैंने तुम्हें भरपूर देख लिया है । पर तुम····तुम अभी मुझे नहीं देख पा रहे हो····ओ मेरे प्रिय ! मैं कब तक इस क्षीणकाय कण्ठसे तुम्हें पुकारूँ ? मैं नहीं चाहता कि हमारी इस एकान्तिकताका कोई दूसरा आभास भी पा सके । मेरा समर्पण तुम्हें एक दिन मेरी ओर अवश्य आकर्षित करेगा । मैं उस क्षणकी अपलक प्रतीक्षामें बराबर नयनोंकी राह बनाता रहूँगा । कब तक नहीं आओगे ?

लिखनेवालेका नाम

प्रभातकुमार 'पंकज'

पेशा

यूनिवर्सिटीमें बी० ए० के दर्जेमें विद्यार्थी (हैं भी नहीं भी हैं)

और

विद्यालयके प्रमुख छायावादी गीतकार।

किस्सा : [पंकजजीके घरके सामनेवाले घरमें जो लड़की रहती थी वह उनके साथ पढ़ती भी थी। वे अपनी खिड़कीसे रोज़ उसके घरमें ताका-झाँका करते थे। लड़कीने इनकी यह हरकत अभी तक नोटिस नहीं की थी। ये उससे बोलना चाहते थे पर उसका बाप मुहल्लेका एक बड़ा जाबिर और ज़ालिम आदमी मशहूर था इसलिए इनकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। भूलकर भी अपने 'प्रिय' को इसीलिए इन्होंने कभी स्त्रीलिंगमें संबोधित नहीं किया।]

§ (किसी बड़ी कम्पनीकी विज्ञापन वाली) बढ़िया डायरीका एक पृष्ठ

····यह कुण्ठा क्या है? क्यों नहीं मेरा व्यक्तित्व पूरी तरहसे इसके विरोधमें उठ खड़ा होता? क्या बन्धनसे मुक्तिकी ओर जाना ही व्यक्तित्व की महत्ता है? या बन्धनको ही वरेण्य समझना 'लाजिकल' है?···· मुझमें 'रिट्रोस्पेक्शन'का माद्दा बिलकुल नहीं है। बेकार ही नैनीताल चला आया। अपने मनकी बात खुलकर कहनेकी मुझे आदत नहीं पड़ी है। पर अपर्णा मुझको क्या सोचेगी? सोचेगी यह आदमी 'कावर्ड' है। तो 'कावर्ड' कौन नहीं होता? 'कावर्डनेस इज़ आलसो ए ह्यूमन एलीमेंट' आज बहुत सुहावना मौसम हो गया है। पर यहाँ कहाँ घूमने जायँ? इस मानेमें नैनीताल बहुत वाहियात है। तालके किनारे मजनूँके पेड़ मुझे बड़े अच्छे लगते हैं। पर अपर्णाको ये पसन्द नहीं हैं। उसे हमेशा सूखे काँटोंसे भरे पेड़ ही भाते हैं। जाने क्या काम्प्लेक्स है!···

लिखनेवालेका नाम

यू० चन्द्रा (अर्थात् उमेश चन्द्र)

पेशा

एक अंग्रेज़ी पत्रिकामें सहायक

हिन्दीमें प्रयोगवादी शैलीके क़ायल लेखक

क़िस्सा : [उमेशचन्द्र महोदय अपने कार्यालयकी एक सहयोगिनी मिस अपर्णासे सहसा 'लव' दिखाने लगे। दोनोंने साथ-साथ नैनीताल में एक सप्ताहकी छुट्टी मनानेका प्रोग्राम बनाया। मित्रता बढ़ी तो अपर्णा-ने विवाहका प्रस्ताव किया। हज़रत यू० चन्द्रा अच्छी पत्नी नहीं बल्कि अच्छा ससुर खोज रहे थे। उनको अब अपर्णामें बहुतसे काम्प्लेक्स दिखाई पड़ने लगे। पर उस लड़कीसे उन्हें सब कुछ साफ़-साफ़ कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी। अपनी इस हरकतको वे एक सिद्धान्तका रूप देना चाहते थे।]

नोट : ये चारों पृष्ठ जिस सफ़ाईसे उड़ाये गये हैं उसके लिए मेरे मनमें छिपा हुआ पत्रकार ही दोषी है। मेरा साहित्यकार तो प्रेरणाके स्रोतोंको इस तरह ढूँढ़नेके सख्त खिलाफ़ है। वास्तवमें ये पृष्ठ छपनेके लिए नहीं थे। बहुत-सी बातें जो छपनेके लिए नहीं होतीं, छपनेपर अक्सर काफ़ी सुख देती हैं। उस सुखकी माँग करना भी कोई बहुत बुरी बात नहीं है। ब्रैकेटका मैटर सब मेरा है उसे मन चाहे पढ़िए मनचाहे छोड़ दीजिए। अस्तु। काम तो खत्म हो गया पर कर्मलेखके साथ ही कर्म-फल भी बताना है। उसका पता अलगसे लगाना पड़ा है। उसे भी बताये देता हूँ पर आप पढ़कर अपने ही तक रखियेगा।

कर्मफल पहिले केसका :

रोज़ तरकारी बेचते-बेचते अन्ततः दूबेजीके साथ वह कुँजड़िन घरमें ही रहनेके लिए चली आई। दूबेजीको तरकारीका सुख तो हो ही गया, अब

वे महाभारत कालकी उपयोगी तरकारियोंपर एक खण्डकाव्य लिख रहे हैं।

कर्मफल दूसरे केसका :

अनन्तजीको रिक्शा बहुत देर बाद मिला। वे बैठकर आगे तो गये पर मार्गमें भटक गये। कई दिन पार्कमें गये पर वह महिला वहाँ भी नहीं आई। उन्होंने यह राज़ तो किसीको नहीं बताया मगर तबसे उनकी आत्मा आज तक भटक रही है।

कर्मफल तीसरे केसका :

पंकजजीसे जब उस लड़कीके बापने विवाहका प्रस्ताव किया तो वे चिहुँककर बोले···"अरे चाचाजी! मैं तो उसे अपनी बहन समझता हूँ।"

कर्मफल चौथे केसका :

अ : यू० चन्द्राने विवाह नहीं किया। अपनी लच्छेदार भाषा और निरर्थक शब्दोंसे बने कुछ सिद्धान्तोंसे उन्होंने अपर्णाको भी 'कनविंस' कर दिया है कि विवाह एक 'लायबिलिटी' है जिससे उन दोनोंको अलग रहना चाहिए। मानवताका सुख मात्र विवाह ही नहीं है। लाइफमें पत्नी नहीं वरन् प्रेमिका गति देती है।

ब : मिस्टर यू० चन्द्रा पत्नी तो नहीं चाहते पर अच्छे ससुरकी खोजमें वे अनवरत रूपसे लगे हुए हैं। उसको वे अपना 'शोध-कार्य' बताते हैं।

स : कु० अपर्णा नामकी एक कवियित्रीकी हिन्दी साहित्यमें और भरती हुई।

पहिली और तरकारी के कालम में देवदास

अगर आप नेता वर्ग के हैं तो आपको पन्द्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी जैसी तारीखें रटी पड़ी होंगी। न जाने कितने 'जन्म दिवस' याद होंगे, जिस दिन आपको कहीं जाकर फ़ीता काटना होगा, कहीं डोरी खींचनी होगी, कहीं हाथमें कन्नी लिये हुए किसी इमारतमें संगमरमरकी एक चौकोर पट्टी लगानी होगी, कहीं फावड़े सहित फोटोग्राफ़रोंके अनुरोध-की रक्षाके लिए पोज़ करना होगा। अगर आप और भी बड़े नेता हो गये तो अपने ही नहीं बल्कि दूसरे देशोंके नेताओंके जन्मदिवस भी आपको ज़बानी याद होंगे। अगर आप मास्टर या विद्यार्थी वर्गके हुए तो हर छुट्टीको रामनामकी तरह जपते होंगे। और अगर आप नौकरी पेशा हुए तो ज़िन्दगीमें पहिली तारीखका कितना मूल्य है, यह आपके अलावा और कोई नहीं बता सकता है। महीनेकी इस पहिली तारीखका निर्माण विधाताने अवश्य ही उस क्षणमें किया होगा जब उनके मनमें

अपने बच्चोंको मिठाई खिलाने, बीबीके लिए कपड़े लाने और सिनेमा दिखानेकी इच्छा जागी होगी।

मैं भी, मैं ही क्या, मेरा सारा घर भर पहिली तारीखका जिस बेसब्रीसे इंतिज़ार करता है वैसी उत्कटता शायद शबरीमें भी न रही होगी। महीनेका आखिरी हफ्ता जब काले बादलोंकी तरह घिरने लगता है तो पहिलीको सूरजकी किरनें उसे बेध-बेधकर जगह-जगहसे अपनी किरनें फेंकने लगती है और मैं फिर दिल खोलकर खर्च करता हूँ। 'आप खर्चके मामलेमें लापरवाह हैं' ऐसा वाक्य कहना हर बीबीके लिए शोभा-वाक्य बन गया है। इसलिए इससे सहमत न होते हुए भी मैं अपनी पत्नीसे यह शोभा-वाक्य सुननेको बहुत उत्सुक रहता हूँ। क्या करूँ? [सोचा था कि बीबीको लेकर कभी कुछ न लिखूँगा, पर अब मेरा यह व्रत भीष्म-पितामहकी तरह टूटता नज़र आ रहा है। अतः मैं चाहता हूँ कि मेरे इस कथ्यको सिर्फ़ 'रथका टूटा पहिया' ही माना जाय।]

मेरी श्रीमतीने अपनी पढ़ाईके दौरमें इकनामिक्स भी पढ़ी थी। उसमें यह बताया गया है कि घरका खर्च कैसे चलाना चाहिए। और... एक बात तो मैं ज़रूर कहूँगा कि वे हिसाब तो इतना अच्छा बनाती हैं कि मेरा बस चलता तो मैं मिस्टर देशमुखके इस्तीफ़ेके बाद वित्तमंत्रीके लिए उनका नाम पेश करता। आमदनी चाहे घट जाय या बढ़ जाय पर वे पाई-पाईका हिसाब ऐसा बना देती हैं कि अगर सिर्फ़ काग़ज़ तक ही मैं सीमित रहूँ तो हमेशा चार रुपिया बचत ही निकल आये। किस मदपर कितना प्रतिशत खर्च करना चाहिए इसका उन्हें पूरा ज्ञान है। जब मैं बताता हूँ कि किरायेका पचास रुपया निकालो तो वे कहती हैं कि 'नहीं किरायेको आमदनीका सिर्फ़ दस प्रतिशत ही होना चाहिए। आमदनीका दस प्रतिशत!! काम हिसाबसे ही होगा।'

बहर हाल, जब पहिली तारीखको मैं तनख्वाह लाकर उनके हाथमें रख देता हूँ और वे उसकी पाई-पाईको प्रसन्न मुद्रामें बाँट डालती हैं

तब मुझे यही समझमें आता है कि दुनियामें कहीं कोई कष्ट नहीं है, कोई क्लेश नहीं है। सब लोगोंको पहिली तारीखसे नई आशाका संचार हो गया होगा। दो तीन दिन मुझे बराबर यही अनुभव होता रहता है कि संसारमें चाकरी ही सबसे 'उत्तम' है जाने किसने इसे 'अधम' कह दिया है। एक बार पैसे लाकर घरमें रख दिये और फिर सब झंझटोंसे छुट्टी।

समस्या चौथे और पाँचवें दिनसे उठने लगती है! ग्वालेको बजटमें उन्होंने चौथे नम्बरपर लगाया था पर जब उसने अपना हिसाब दिया तो पता चला कि वह दूसरे नम्बरपर है। किरायेकी रक़म और जिन्सकी रक़मके बराबर ही वह ग्वाला पैसा चाहता था।

'अब क्या करूँ?' वह कहती हैं।

'किरायेमें-से निकालकर दे दो। फिर देखा जायगा।'

अर्थशास्त्री श्रीमती ग्वालेको टाल देनेके लिए किरायेमेंसे रुपये निकालकर दे देती हैं। तब तक मकान मालिकका लड़का किराया माँगने आ जाता है।

'अब क्या करूँ?' वह फिर पूछती हैं।

समस्याको तत्काल हल करनेमें जैसे मेरी ही बुद्धिने सारा ठेका ले रक्खा है।

'अरे बिजलीके बिलमेंसे पैसा दे दो। बिजलीका पैसा आज ही तो देना नहीं है।'

मकान मालिकका लड़का अपना रुपया लेकर चला जाता है और दो दिन बाद बिजलीका बिल 'पे' करनेकी तारीख आ जाती है।

'सुनते हैं आप?'

ज़ाहिर है कि मैं सुन रहा हूँ पर मुँहसे बोल नहीं निकल पाता।

'सुनते हैं कि नहीं? बिजलीका बिल अदा करनेकी तारीख आज ही है। कल तक न हुआ तो बिजली कटनेकी नौबत आ जायगी। ये बिजली

वाले बड़े निर्मोही होते हैं। देखो बगलके पहाड़ी लोगोंकी बिजली काट ही दी। इसे तो आज किसी तरह भिजवा ही दो।'

'हूँ ऽऽऽऽऽ।'

'हूँ क्या? तुम तो हूँ करके रह जाते हो और अगर बिजली कट गई तो···बताओ न क्या करूँ? आखिर घरके मामलोंमें कुछ दिलचस्पी आपको भी रखनी चाहिए कि सब कुछ····'

'अच्छा ऐसा करो' राजाज्ञाकी भाँति गुरु गम्भीर स्वरमें मैंने सुझाव दिया 'रोज़की सब्ज़ी तरकारीके लिए तुमने जो तीस रुपया निकाला है उसमें-से बीस निकालकर बिजलीका बिल पूरा करके दे दो। आगे देखी जायगी।'

बिजली नहीं कटती। यह बला भी टल जाती है।

और दूसरे दिन डाकसे इंश्योरेंसका रिमाइण्डर।

'सुनती हो मैडम। यह बीमा वाला हिसाब···'

'बीमा? यही तो आपकी बातें अजीब होती हैं, पहिलेसे बताते तो हिसाबमें लिख लेती? अब ऐन वक्तपर लिखूँ तो कहाँ लिखूँ?'

'जाने दो। इसे लिखो ही मत। इस बार लकड़ीवाले और कोयले वालेका हिसाब गोल कर जाओ। अगली पहिलीपर सबका पाई-पाई साफ़ कर देंगे। बात यह है कि अगर इंश्योरेंसका पैसा न दिया तो जो कुछ दिया है वह भी डूब जायगा।'

और जब लकड़ी कोयलेवाले अपना पैसा माँगने आये तो मेरा भाषण····

'क्यों जी कल्लू, तुमने यह क्या कोयला दिया है? जाने कहाँ-कहाँ-का छँटा हुआ कोयला हमारे घर दे जाते हो? जलता ही नहीं है। पत्थर-का कोयला तो आजकल इतना अच्छा आता है कि बिलकुल इमलीके कोयलेकी तरह जलता है। एक तो इतना रद्दी कोयला दिया है ऊपरसे रोज़-रोज़ अपना पैसा माँगनेके लिए दरवाज़ेपर खड़े रहते हो। भाई,

अपना यह बचा हुआ कोयला उठा ले जाओ। हम तुमसे भर पाये। पैसा-वैसा हम कुछ नहीं देंगे।'

कोयले वालेका गिड़गिड़ाना····

'अरे नहीं' बाबू, कोयला अस तो खराब नाहीं रहा। खैर होए। हम बदल देब। जस कहैं तस करि देब बाबू।'

भाषण पीकर वह अगले महीनेकी पहिलीका ध्यान करता हुआ चला गया। चतुर आदमीकी तरह दूसरे महीनेमें दूसरी या तीसरीको आकर अपना पैसा बटोर ले जायगा।

और फिर दफ्तरसे कमाई हुई एक उदास, बोर और दोस्त-हीन शामकी कहानी···।

'सुनो। 'देवदास' दो बार आकर चली गई। आज फिर प्लाजामें आई है। चलना हो तो चलो।'

'बजट ? बजट क्या बोलता है ?'

'बजट होता तो क्या तुमसे सलाह लेती ?'

'बनियेका पूरा पैसा दे दिया क्या ?'

'अभी कहाँ दिया ? उसके भी आधे ही रह गये हैं। आधेमें-से तो सब्ज़ी तरकारी आ रही है।'

'वेरी गुड। आधे तो हैं न ? सुनो ऐसा करो कि सब्ज़ी तरकारीमेंसे आजका सिनेमाका पैसा भी निकालो।'

'वाह जी वाह ! आप तो सब हिसाब ही गड़बड़ कर देते हैं। भला तरकारीके कालममें 'देवदास' कैसे लिखूँ ?'

'अच्छा भाई, तरकारीके कालममें देवदास नहीं फ़िट बैठते तो उसमें देवदासकी जगह टमाटर मटर गुच्छी दिखा दो। लिखो चाहे कुछ, देख लेंगे सिनेमा।'

'पर बनियेका हिसाब···?'

'अगली पहिली, अगली पहिली। बस पाई-पाई बेबाक़। न हम

कहीं भागे जा रहे हैं और न बनिया ही। फिर आज तक किसीका एक डबल उधार रहने दिया है ?'

गरज़ कि पिक्चर देख आये पर चालाकीसे। हिसाबमें उसका कहीं ज़िक्र नहीं कि आप हमें पकड़ लें। अब ज्यों-ज्यों तीसरा हफ्ता चुकता होने लगता है त्यों-त्यों क्राइसिस बढ़ती जाती है। कथाका चरमोत्कर्ष पास आने लगता है। नौकरीके बारेमें बड़ा 'पुअर आइडिया' होने लगता है। फिर वकीलों, व्यापारियों और डाक्टरोंकी रोज़ाना आमदनी-का ध्यान आता है। फिर अपनी प्रतिभाका ध्यान आता है। फिर 'अधम' चाकरीवाला दोहा याद आता है। बेकार बैठे-बैठे भगवान् बुद्धके बारेमें पढ़नेकी तबीयत होती है और जी चाहता है कि ज्ञानका बोधिवृक्ष हो या न हो पर एक तनख्वाह 'वृक्ष' ज़रूर होना चाहिए जिसके ज़रिये जनम-जनमान्तरकी तनख्वाह एडवांसमें ली जा सके। मगर साइंस है कि वह एटम बम बनानेमें मरी जा रही है। महीनेमें आखिर तीसरे और चौथे सप्ताह क्यों होते हैं। ऐसा कलेंडर क्यों नहीं बनता जिसमें पहिला हफ्ता हो और फिर पहला हफ्ता हो! मगर···रावणके सिरकी भाँति समस्याएँ उठती चली आती हैं और हम हर समस्याका जवाब देते हैं···'पहिली।' 'पहिलीको' 'अगली पहिली····'

धीरे-धीरे महीने भरके ऊहापोहका भवसागर पार करके फिर अट्ठाईस उनतीस तारीख़ आ जाती है जब पहिलीकी सुनहरी झलक दिखाई देने लगती है। तब मैं फिर उसी पुरानी 'पहिले-हफ्ते-वाली-अकड़' के साथ सबसे बोलने लगता हूँ। भगवान् बुद्धके बारेमें लिखी हुई किताबोंको फिर उठाकर ताक़पर रख देता हूँ। 'सौ से बुरा तो एकसे बेहतर बना दिया' वाला शेर गुन-गुनाता हुआ पुराने ब्लेडको गिलासमें रगड़-रगड़कर हजामत बनाता हूँ, तर-कारीके कालममें देवदासको जबरन बैठाता हूँ और मेरी श्रीमती नई पहिलीका पूरा-पूरा बजट बनानेके लिए इक्नामिक्सकी नई किताबें पढ़ने लगती हैं।

गणेशकी स्टेनोग्राफ़री

नारद इधर बहुत दिनोंसे भारत देशके बारेमें जैसी बातें स्वर्गलोकमें इधर-उधर कहते फिर रहे थे, उससे लोगोंको वह सब तनिक भी विश्वास योग्य नहीं लगता था। स्वर्गलोकसे अनेक सद्‌भावना-मिशन इस कामके लिए भारत भेजे गये जो परोक्ष रूपसे इस देशका पूरा हाल-चाल वहाँ पहुँचायें। सारी रिपोर्ट इस बातपर एकमत थीं कि नौकरशाही बुरी तरह भारतपर छाई हुई है। उसका सुधार भी बुरी तरह करना होगा। काम कठिन था। कोई तैयार न हुआ। आखिरकार गणेशजीने ही अपने आपको इस कार्यके लिए समर्पित करना चाहा। इस प्रकार गणेशजीका 'एक-व्यक्तीय-कमीशन' नौकरशाहीपर रिपोर्ट देने और सुधारनेके लिए खास तौरसे भेजा गया। मूषक वहीं छोड़ दिया और स्वयं अपना कमीशन लिये-दिये वे मृत्युलोकमें उतर आये। भेस बदल डाला पर नाम ज्योंका-त्यों रख लिया।

नौकरी करनेके लिए गणेशजी कमर कसकर मृत्युलोकमें उतर तो आये पर यह न समझ पाये कि मुँह किधरको करें! ज्ञानका अंधाधुंध बेकार भण्डार पास पड़ा था। सोचा, उसके सहारे विश्वविद्यालयकी अध्यापकी

कर लेंगे। कहनेको नौकरी भी रहेगी पर यूँ नहीं भी रहेगी! मई जूनके महीने कैलाशमें कटेंगे और बाक़ी दिन आरामसे गुज़र जायँगे। विश्व-विद्यालयके आस-पास मँडराये भी। मगर लड़कोंका रंग ढंग देखकर कुछ सकपका गये! गुरुजनोंकी खिल्ली उड़ानेवाले विद्यालयको 'रहना नहिं देस बिराना है' घोषित कर दिया! कहीं किसी योजनामें लगे हाथ अफ़सरी मिल जाती तो भी काफ़ी सुख मिलता पर सिफ़ारिशी चिट्ठी पासमें न थी। दफ्तरोंके चक्कर काटने शुरू किये! कहाँ सिर समाये और कहाँ आसानीसे घुस जायँ। बिना घुसे राज़ कैसे पता चले? हर दफ्तरमें बाबुओं और क्लार्कोंसे उनकी खासी पहिचान हो गई। एकाएक गणेशजीपर ज्ञानका आलोकपुञ्ज उतरा और उन्हें उन सबके बीच एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्राणी दीखा—बड़े साहबका स्टेनोग्राफ़र। साहब न होते हुए भी वह बिल्कुल साहब जैसी ही रोबदाब और आतंक रखता था। साहबको जिस प्रकार इधर-उधर घूमनेको मिलता—स्टेनो भी उनकी पूँछकी तरह वही खातिर और सुख प्राप्त करता था। बाबुओंके वर्गका होकर भी वह बाबुओंसे ही चाय पीकर उन्हें कृतज्ञ करता था—ठीक उसी तरह जिस तरह गणेशजी देवताओंके वर्गमें होते हुए भी उनसे पूजा पाते थे। गणेशजीपर इस व्यक्तित्वका अच्छा प्रभाव पड़ा। उसका काम पूछा! वह भी उनको जाना पहिचान-सा लगा! वेदव्यास तो उनको पूरी महाभारत ही डिक्टेट करवा चुके थे! छोटे-मोटे नोट-वोट लिखना उनके बायें हाथका खेल था! योग्यता भरपूर थी। महाभारतका चूँकि सन्दर्भ देना था, इसलिए गणेशजी अपने ओरिजनल रूपमें साहबके कमरेका पर्दा हटाकर भीतर घुसे। सामने गणेशजीको साक्षात् देखकर साहबको कँपकँपी आ गई। गणेशजीने विलं-बित लय एकतालमें निबद्ध संस्कृतनिष्ठ पदावलीमें साहबसे स्टेनोग्राफ़रीके पदकी कामना की! साहब घबरा कर बोला—

"इम्प्लायमेंट एक्सचेंज! इम्प्लायमेंट एक्सचेंजसे आइए, वहाँ जाइए, वहाँसे आइए—जाइए—जाइए—"

गणेशजी इस टेकनीकसे परिचित न थे। रोज़गारके दफ्तरमें जाकर नाम लिखवा आये। उधर मूषक बार-बार सन्देश भेज रहा था कि मालिकके चले जानेके बाद उसे बराबर भण्डारसे सड़े-घुने दाने मिल रहे हैं। गणेशजीको मूषकसे बड़ा लगाव था, इसलिए उसकी बड़ी चिन्ता हो गई। इधर नौकरशाहीमें नीचे स्तरसे घुसनेकी उनकी योजना भी विशेष फलीभूत नहीं हो रही थी। गणेशजी परेशान थे। उन्हींके साथ नौकरी खोजनेवाले कई बेकार ग्रेजुएट इस बीच गणेशजीके मित्र हो गये। शामको बैठकर वे हर दफ्तरकी 'वैकेंसी'के बारेमें और वहाँकी सिफ़ारिशों ज़रियोंके बारेमें बातें करते थे। एक दिन सहसा गणेशजी ने कहा—"हमारा तो कॉल आ गया है। अब इस इन्टरव्यूमें क्या करेंगे?"

"पर्सनालिटी और जनरल नॉलेज यही दो चीज़ें वे इन्टरव्यूमें देखते हैं।" मित्रोंने अनुभवके आधारपर बताया।

गणेशजीको अपनी पर्सनालिटीपर नाज़ था। अपने रूपको वे नौकरीके अनुसार गढ़ चुके थे। कुछ तुनुक उठे—

"पर्सनालिटीका क्या मतलब?"

"मतलब कुछ नहीं। वहाँ इन्टरव्यूमें तो आपको बन्द कालरका कोट और पतलून पहिनकर जाना होगा! आपकी इस वेशभूषासे काम न सधेगा।"

गणेशजीको काम साधना था। वेशभूषापर वादविवाद छेड़ना उचित न लगा। हाँ, जनरल नालेजके बारेमें उनको कुछ जानना बाक़ी था। बोले—

"छहों शास्त्र, चारों वेद, अठारहों पुराण, उपनिषद्, दर्शन सब मेरी जिह्वापर विराजते हैं—और भला क्या चाहिए?"

"अच्छा तो बताइए चिलीका प्रतिनिधि यू० एन० ओ० में परसों क्या कह रहा था?" मित्रने पूछा।

गणेशजीकी सतत-जागृत-बुद्धि फ़ेल होने लगी। जनरल नॉलेजकी किताबोंको बिना रटे क्या होगा ? यह सब जाननेसे तो अच्छा है कि घर वापस चले जायँ। पर सद्भावना मिशनकी बात, नौकरशाहीकी सुधारकी बात—बीड़ा उठानेकी बात—सब कुछ याद आने लगा।

"कैसी भी तपस्या हो, इस बार तो नौकरी करके ही देखूँगा। आख़िर यह भी क्या बला है ?" गणेशजीने मनमें ठान लिया !

और वे यू. एन. ओ. की कार्यवाही, क्रिकेटके बल्लबाजों और भारतके गवर्नरोंके नाम एवं अणुबमकी हानियाँ याद करने लग गये ! ख़ुशख़त होनेपर भी टाइपिस्टका काम उन्होंने सीख लिया। संग्राममें उतर पड़े। अस्तु, इंटरव्यूमें इसी तरहके घिसे-पिटे सवाल पूछे गये और उनकी नइया पार हो गई। बोर्डने अन्तमें एक पिटा हुआ सवाल फिर किया—

"आपको कुछ कामका तजुरबा है ?"

गणेशजी बिना चूके बोल उठे—

"जी, मैंने महाभारत ही लिखी है !"

"तो क्या आप ही उस महाभारतके लिए रिस्पांसिबुल हैं ?"

गणेशजी इस तरहके बेहूदे सवालके लिए तैयार न थे जिसके कई अर्थ एक साथ निकलते हों। चटपट कहा—

"जी नहीं ! मैंने तो सिर्फ़ डिक्टेशन लिया था।"

बोर्डने पास कर दिया ! पर डाक्टरी परीक्षा लेने वालोंने सार्वजनिक हितमें कुछ प्लास्टिक सर्जरी करानेका आदेश दिया। गणेशजी अपना व्यक्तित्व नहीं खोना चाहते थे। पर बेकार मित्रोंने सलाह दी—"नौकरीमें तो भई, अपने व्यक्तित्वको दबाना ही पड़ता है। बिना उसके काम नहीं चलता ! अपने मनकी करना है तो नौकरी ही क्यों करो ?" गणेशजीने सोचा कि उनका ओरिजनल फ़ेस तो बहुत पहिले ही सर्जरीसे उनके पिता बदल चुके हैं—अब क्या है ? एकबार और सही !! लिहाज़ा उनकी फ़ेस

वैल्यू बदल गई। नोकरशाही चेहरा पहिले बदलवाती है, गणेशजीने नोट कर लिया!

बहुत दिनोंसे साहब बिना स्टेनोके काम कर रहा था। स्टेनोको देखा तो ललककर पास बुलाया। दफ्तरकी सारी कुर्सियाँ गणेशजीके लिए छोटी साबित हुईं। हारकर उनके बैठनेके लिए एक चौकीका प्रबन्ध किया गया। चौकीपर टाइपराइटर लेकर वे बैठ गये।

गणेशजीके काम करनेकी रफ्तारसे पूरे सचिवालयमें क्रान्तिके लक्षण दिखाई पड़ने लगे। एक स्टेनोग्राफ़र एक दिनमें इतना काम कर लेता था जितना दूसरे स्टेनोग्राफ़र दस महीनेमें नहीं कर पाते थे। स्टेनोग्राफ़रकी तीक्ष्ण-बुद्धिमत्ताकी ऐसी धाक जमी कि स्वयं उनके साहबकी अक्ल गुम हो गई। साहबके बजाय स्टेनोग्राफ़रका मत और उसका नोट अधिक कारगर साबित होने लगा। अकेले गणेशजीने न सिर्फ़ अपने साहबका सारा काम करके उन्हें खाली कर दिया बल्कि उस दफ्तरके जितने भी दूसरे साहब थे उनके भी बचे और लटकाये हुए कामोंको उन्होंने मिनटोंमें पार करके रख दिया। इस गतिसे काम करनेवाले एक आदमीके आ जानेसे दूसरे लोग काम तो उतनी तेज़ीसे नहीं कर सके पर गणेशजीने एक नया मानदण्ड ज़रूर लगा दिया। जिस कसौटीपर उन सबका काम कसा जाने लगा। दफ्तरके चीफ़ने कामकी अधिकताके कारण जितना भी अतिरिक्त स्टॉफ़ माँगा था—कई छोटे-मोटे अफ़सर बीसियों क्लर्क और स्टेनो और दर्जनों चपरासियोंकी लिस्ट—वह सब ऊपरसे कैंसिल होकर वापस आ गई। गणेशजीकी लगन और निष्ठाकी प्रशंसा करते हुए ऊपरके साहबने देशके नव-निर्माणमें उसी प्रकारसे सहयोग देनेके लिए सभी क्लर्कों और साहबोंको चेतावनी दी। गणेशजी नौकरशाहीकी जड़में मट्ठा डालने लगे।

आखिरकार जब जीवन और मरणका प्रश्न सामने आगया तो हारकर सब साहबोंने एक गुप्त सभा की जिसमें इस नये संकटसे उबरनेका रास्ता

सोचा जाने लगा। यदि गणेशजीने दफ्तरका रवैया ही बदल दिया तो बहुत शीघ्र अनेक अफ़सर और क्लर्क कामसे बाहर निकाल दिये जायँगे, यह चिन्ता सबके चेहरेपर स्पष्ट ही उभरी हुई दिखाई पड़ रही थी। जिन साहबने गणेशजीको पहिले स्टेनोके रूपमें ग्रहण किया था वह अब 'डिस्चार्ज नोटिस' पा गये थे क्योंकि वे काम लटका नहीं पाते थे अतः पूरा काम समाप्त होते ही उन्हें वह अस्थायी पद समाप्त करके हटना पड़ा। सभी 'साहब' लोग—छोटे और बड़े—इस आकस्मिक-योग्यता-स्फीतिसे घबराये हुए थे और एक दूसरेकी ओर अकुलाकर निहार रहे थे !!

तभी उसमेंसे एक पुराघुँठ अफ़सर उठा ! यह अपने विभागमें बड़ा ज़ालिम अफ़सर जाना जाता था। दर्जनों योजनाओंको बीचमें ही ठप कर देनेका श्रेय इसे प्राप्त था। सैकड़ों सिफ़ारिशी लोगोंको हर विभागमें फ़िट करनेके लिए वह प्रसिद्ध था। न जाने कितनी कमेटियोंकी रिपोर्ट उसने सालोंसे लटका रक्खी थी और जिनकी रिपोर्ट आ गई थीं उन्हें भी वह तरह-तरहके 'आब्जेक्शन' लगाकर फिर वापस भेज चुका था। सब उससे डरते थे। उस अफ़सरने यह महान् संकट आया हुआ देखकर नीलकण्ठकी तरह गणेशजीको अपना स्टेनो बनानेके लिए चीफ़से कहा ! गणेशजी उसके स्टेनो बना दिये गये !!

इस ज़ालिम अफ़सरने गणेशजीको नौकरशाहीके मज़े दिखाने प्रारम्भ किये। अब तक वे चटपट ड्राफ्ट बनाकर अपने साहबसे पास करा लिया करते थे पर इस नये साहबने हर ड्राफ्टमें कुछ-न-कुछ ग़लतियाँ निकालनी शुरू कर दीं। जो ड्राफ्ट सामने आता उसमें एक बार दो लाइनें काटकर उसे फिरसे टाइप करवाता। एक लाइन डिक्टेट करता और उसे कटवाकर कहता—'क्या लिखा पढ़ो' ! गणेशजी पढ़ते तो वह कहता—"काट दो। लिखो नेक्स्ट पैराग्राफ़।" फिर अगली लाइन लिखवाता और दस बार उसे कटवाता। दफ़्तर बन्द होने तक कुल जमा आठ लाइन होतीं जिसे उन्हें टाइप करके दिखानेका वक़्त न मिल पाता।

अतिरिक्त योग्यताके कारण गणेशजीके पास दूसरे स्टेनोग्राफ़रोंका बहुतसा काम चला आता जिसे वे पहिले चुटकी बजाते निपटा दिया करते थे। पर अब वह सारा काम और अपने साहबके नोट घरपर बैठकर रात-रात-भर टाइप करते थे। ज़ालिम अफ़सरका कहना था कि—जब तक स्टेनोग्राफ़र अपने घरपर काम न करे तब तक दफ्तरमें भला क्या काम ही हुआ? और स्टेनोकी प्रैक्टिस ही क्या हुई?

अपने बेटेका यह हाल देख कर भगवती पार्वतीने शिवसे कहा—"इसके लिए कुछ कीजिए! यह तो अपनी ज़िदमें अड़ा हुआ है! कमीशन गया भाड़में! यदि इसी तरह काम करता रहा तो मेरे इस लाड़ले लालकी काया घुल-घुलकर पानी हो जायगी!"

शिवजी पहिले तो कुछ न बोले। मगर जब भगवती पार्वती हर समय वही चरखा दुहराने लगीं तो शिवजीने कहा—"एवमस्तु बाबा, एवमस्तु!"

गणेशजीको अब यह पता चलने लगा था कि 'असली साहब' कैसा होता है और वह स्टेनोकी प्रतिभाको किस सीमा तक आगे पीछे ढकेल सकता है। पर गणेशजीके निश्चयमें अभी बल नहीं पड़ा था। मूषककी चिन्ता थी सो पहिलीकी तनख्वाह मिलते ही गणेशजीने एक बोरा बढ़िया गेहूँ अपने परम प्रिय वाहनके लिए भेजा और लिखा कि "यह नौकरी तुम्हारे ही लिए कर रहा हूँ। कोई चिन्ता न करना। तुम प्रेमसे इस बोरीको काट-काटकर इसके दाने अपने बिलमें लुढ़का ले जाओ! कोई माईका लाल अब तुम्हें कुछ नहीं कह सकेगा! मैं जल्दी ही आऊँगा। आनन्दसे रहना। बिल्लियोंसे बचकर रहना। रात-बिरात घूमने मत जाना।" चिट्ठी लिखते-लिखते उनकी आँखोंमें आँसू आ गये। मूषक याद आ गया।

दफ्तर सुबह दस बजेसे होता था। साहब दो बजे आता था। पर वह सुबह दस बजकर एक मिनट होते ही टेलीफोन करके स्टेनोके आने

न आनेके बारेमें पूछ-पूछकर नाकमें दम कर देता। स्टेनोके आते ही फोन पर ही नोट डिक्टेशन शुरू कर देता था।

गणेशजीको तैयार होते-ही-होते दस बज जाते थे। दोपहरमें उन्हें फिर भूख लगती थी। अतः टिफ़िनके लिए वे एक झाबा लड्डू रास्तेमें हलवाईकी दूकानसे तुलवाकर साथ ले जाते थे। उसमें भी पन्द्रह मिनट लग जाते थे। बस पकड़नेकी चेष्टा पहिले करते रहे। पर क्यूमें खड़ा होना और फिर भरी बस आनेपर कण्डक्टरका हाथ हिलाकर बुत्ता पढ़ा जाना, उन्हें बहुत खला। दफ्तर लेट पहुँचने लगे। साहब रोज़ लेक्चर देने लगा। मित्रोंने किसी दूसरी सवारीसे आनेकी सलाह दी। छोटी-छोटी स्कूटरोंपर लोगोंको दौड़ते देख सहसा उन्हें फिर अपने मूषककी याद आ गई। सोचा—उसके आ जानेसे एक-से-दो हो जायँगे और इस साहबसे भी निपट लेंगे!! उसका विरह उन्हें वैसे भी बेहद सता रहा था। चिट्ठी लिखकर मूषकराजको बुला लिया।

गणेशजी अब दफ्तर जल्दी पहुँचने लगे। स्टेनोके पास सवारी जान साहब उन्हें घरपर भी बुलाने लगा। कामपर कामपर कामपर काम—गणेशजीको कुछ पहिली बार महसूस हुआ। दफ्तरमें मूषकराज उनके पास ही इधर-उधर बैठे रहते। सहसा एक महान् कठिनाई सामने आई। गणेशजीके पास आने-जानेवाली फ़ाइलें मूषक महाराजका मनोरंजन करने लगीं। जगह-जगहसे उन्हें कुतरकर वह ऐसा 'फ़िल-वर्क' दिखाते कि उन फ़ाइलोंसे मतलबकी बातें ही गायब होने लगीं! साहबसे इस तरह वह मालिकका बदला लेना चाहते थे। मूषकराज इधर-उधर दबे रहते! पर ज़ालिम अफ़सरने दफ्तरमें पकड़-धकड़की योजना बनाई!! चूहे पकड़नेकी मशीन लग गई और ज़हर मिली गोलियाँ दफ्तरमें बिखर गई। गणेशजीको इसका पता न था। मूषकराज एक दिन पकड़ लिये गये।

शामको सवा पाँच बजे जब वे अपना वाहन खोजने लगे तो चौकीदारने बताया "आज मुसवा तो बन्द कर दिया गवा।" गणेशजीने जाकर

देखा लाल फ़ीतेमें मूषकराज बँधे पड़े थे। गणेशजीने कन्सर्न्ड-क्लर्क (सम्बन्धित व्यक्ति) से कह-सुनकर वह अपना वाहन किसी तरह छुड़ा लिया (उसका बहुत-सा काम उन्होंने पहिले कर दिया था)। मूषकराजने एकाध गोलियाँ भी खा ली थीं! आँखें पलट रहीं थीं। गणेशजीको पहिली बार लगा कि यह नौकरशाही काम ही नहीं प्राण भी ले सकती है!! गणेशजी मूस-सेवामें लगे रहे। अस्पतालसे ही उन्होंने अपना इस्तीफ़ा लिखकर भेज दिया जिसमें उन्होंने दफ्तरोंमें मानवीय संवेदनाओंके अभावका उल्लेख किया था!

शिवजीकी माया काम कर गई। गणेशजीकी नौकरी छूट गई पर वे वापस न लौटे! यद्यपि उन्होंने यह लिखकर भेज दिया है कि इस लाल फ़ीतेसे लड़नेके लिए 'एक व्यक्तीय-कमीशन' बिलकुल बेकार है। इसके लिए तो पूरा 'कैबीनेट-मिशन' आना चाहिए।

पर फिर भी वे अभी इसी धरतीपर सुराग़ लगा रहे हैं कि किस एँगिलसे इसमें घुसकर इसका विस्फोट किया जा सकता है?

आपको पता चले तो किसी भी दफ्तरके स्टेनोके मार्फ़त उन्हें सूचित कीजिएगा।

प्रमोशनका अर्थ-शास्त्र

आज जब दोस्तोंने फिर टोका तो नन्दकुमार टाल देनेवाली अपनी चिरपरिचित मुसकराहट चेहरेपर न ला पाये। दफ्तरमें उन्हें दुहरा प्रमोशन मिला था। तनख्वाह बढ़ गयी थी और कुर्सी भी कुछ ऊँची हो गई थी। यद्यपि बैठते वे सबके साथ ही उसी कमरेमें थे पर अब उनकी और उनके सहयोगियोंकी मेज़ोंके बीच एक परदा लग गया था। जिस दिनसे उनकी तरक्क़ीकी उड़ती हुई खबर दफ्तरमें आई, साथ काम करनेवाले दोस्तोंने उन्हें घेरना शुरू कर दिया था। नन्दकुमार कुछ दिन तो उसे एक उड़ाई हुई अफ़वाह कहकर टालते रहे और मन-ही-मन मनाते रहे कि यह अफ़वाह सच हो जाय।

आखिर अफ़वाह एक दिन सच हो गई। उसके सच होनेपर दावत-भ्रमरोंने और अधिक मुखरता दिखाई। भन्नाहट ज़ोर पकड़ने लगी। नन्दकुमारने सबका एक ही जवाब याद कर लिया था—"भाई कुर्सीपर बैठ जाने दो, तब इसकी बात करना। अभी पता नहीं क्या हो!" होते करते दो-चार दिनमें वे उस ऊँची कुर्सीपर बैठ भी गये और उनके चारों तरफ़ परदा भी खिंच गया। परदा खिंच जानेसे दोस्तोंके लहजेमें कुछ

अन्तर भले ही आ गया हो, पर अपनी बात दुहराना उन्होंने नहीं छोड़ा। नन्दकुमार अब भी हँसकर टाल जाते—

'अरे यार! तनख्वाह तो मिलने दो। जिस दिन बढ़ी हुई तनख्वाह हाथ आई, बस उसके दूसरे ही दिन दावत।'

आज पहिली तारीख थी। नन्दकुमारको बढ़ी हुई तनख्वाह मिल चुकी थी। दोस्तोंने फिर टोका तो वे आज गम्भीर हो गये—

'अच्छी बात है। कल रही। कल शामको जब दफ्तरसे उठेंगे तो सीधे यहींसे चले चलेंगे।'

दावतखोरोंके कोडमें ऐसी हुंकारीका भी अभूतपूर्व स्वागत करने और दावत खिलानेवालोंकी प्रशस्ति पढ़नेका नियम है। 'पराञ्च' तो दुर्लभ कहा गया है और फिर नन्दकुमारका। सबने एक स्वरसे आनेवाले कल-की सन्ध्याको हर तरहसे दावतके लिए सिद्धि-योग बतलाया—यानी साहब बीमार हैं आधे दिनके बाद ही चले जाते हैं, कल कोई खास काम पेंडिंग नहीं है, शामको दिनभर काम करनेके बाद भूख भी अच्छी लग जाती है और फिर वही शाम नन्दकुमारको भी 'सूट' करती है।

दूसरे दिन।

पाँच बजनेवाले हो गये। लोगोंकी बेक़रार नज़रें बार-बार घड़ीकी तरफ़ घूम रही थीं पर नन्दकुमार अपनी मेज़परसे सिर उठानेका नाम नहीं ले रहे थे। कामपर काम। 'अब यह फाइल लाओ, अब वह फाइल लाओ।' सुनते-सुनते जनतामें भगदड़ पड़ गई। दावत गई, सो गई—पाँच बजेके बाद भी काम। दावतका मोह छोड़कर लोगोंने पाँच बजे मिलनेवाली मुक्तिको ही वरेण्य समझा और धीरे-धीरे वे खिसकने लगे। नन्दकुमार कामपर जुटे हुए थे। पर परदेके उस पार भी तीन योद्धा मोर्चेपर डटे रहे। ये तीनों दफ्तरमें हर एकसे चाय पीनेके लिए प्रसिद्ध थे—कभी किसीका काम अटकाकर फिर उसे सुलझा कर एहसान रखने

के बहाने और कभी कहीं चाय आती देखकर वहीं जमे रहनेके सहारे। आखिर नन्दकुमार सवा छः बजे परदेके बाहर आये। बोले—

'अच्छा! सब लोग उड़ गये? आज तो आप लोगोंने दावत तै की थी। क्या कहूँ—शायद मुझे ही देर हो गई। काममें ऐसा लगा रहा कि वक़्तका पता ही न चला। आप लोग मुझे ज़रा-सा रिमांइड तो कर देते।'

अवरुद्ध त्रिगुट्टके नेताने कहा—

'अरे साहब! जो गया वह गया। जो सोया सो खोया।—आख़िर आपने तो सबसे कल ही कह दिया था न—बस होगई बात—'

दूसरे सज्जन रोज़ दावतकी याद दिलाते थे। होटलवाले उनकी सूरत पहिचानते थे। कहने लगे—

'दे वेर नाट इंटरेस्टेड इन द टी।' हुं हु! घरपर जाकर बीबीसे बतियायेंगे, चूल्हा फूँककर दोनों परानी चाह बनायेंगे तब उसे चरपइया पर पौढ़के गिलासमें पियेंगे। यहाँ चाय पीकर क्या करेंगे। होमसिक।'

तीसरे सज्जन काम निकाल चलनेकी कला ख़ूब जानते थे।

'बात यह है कि साहब जो लोग आपके प्रोमोशनसे दरअस्ल खुश थे और हैं वह तो रुके रहे और बाक़ी लोगोंको क्या—यह तो दफ्तरमें रोज़ ही हुआ करता है। आइए हम लोग चलें।'

तीनों उठ खड़े हुए। नन्दकुमारने हँसकर फिर एक बार महीन कन्नी काटनी चाही—

'हाँ, हाँ वह तो सब ठीक है भाई। पर ऐसा न हो कि बाक़ी लोग बुरा मानें कि हमें छोड़ गये। सब लोग साथ ही चलते तो—'

पर वे तीनों न जाने कितनोंसे दावतें खा चुके थे—चाहे और अन-चाहे दोनों तरहके असामियोंसे उनका पाला पड़ चुका था। यह पैंतरा वह पलक मारते ही समझ गये। न नौ मन तेल होगा और न राधा रूपी नन्दकुमारका नाच रेस्तराँमें होगा। पहिला नेता बोला—

'जिसको गरज होती वह झक मारकर रुकता। यह बात तो दस दिनसे हो रही थी साहब। सभी जानते थे कि आज चाय पीने जाना है। उसके लिए कोई छपा हुआ नवेद तो बँटा नहीं था। रुकना चाहते तो रुकते, नहीं तो पाँच बजे खिसक जाने वाली अपनी आदतसे बाज़ न आये। आप परवाह मत कीजिए। कल हम लोग इन सबसे खुद ही निपट लेंगे। आइए चलिए!'

नन्दकुमार फिर अपनी उसी संवाद मिश्रित हँसीके साथ बोले—

'ठीक है, ठीक है। अब आप ही लोग उनसे समझियेगा।'

इस बार वे भी इनकी हँसीमें शामिल हुए। वे तीनों नन्दकुमारके साथ सिविल लाइंसके बाज़ारमें पहुँच गये।

'कहाँ चला जाय?'

'जहाँ आप सबकी तबीयत हो।'

'किसी अच्छी जगहमें बैठिए।'

थोड़ी ही देरमें वे सिविल लाइंसके एक मशहूर और मँहगे रेस्तराँमें जाकर बैठ गये। बैरा आकर खड़ा हो गया। आर्डर दे दिया गया। समोसे, रसगुल्ले, टोस्ट-मक्खन, और पकौड़ियाँ—थोड़ी ही देरमें बैरेने सब सामान मेज़पर लाकर रख दिया। चटनी उठाकर वह मेज़तक ला रहा था कि बात छिड़ी—

'सामान अच्छा देते हैं ये लोग।'

'अच्छा तो देते हैं पर दाम भी ख़ासा वसूल करते हैं जनाब।'

तब तक बैरा सामने आ गया।

नन्दकुमारने अपनी भौंहे कुछ ऊपर चढ़ाकर पूछा—

'क्यों भई, यह समोसे क्या हिसाब दिये?'

'दो-दो आने साब।'

'दो-दो आने? नन्दकुमार उसी रुखसे बोलते रहे, 'दो-दो आने किस

हिसाबसे दिया जी ? आखिर कितनी आलू इसमें डालते हो ? पावभर आलूमें कितने समोसे निकलते होंगे ?'

'साब ठीकसे पता नहीं पर पन्द्रह समोसे तो निकल ही आते होंगे।'

मामला कुछ दूसरा रंग पकड़ रहा था। लोगोंने अपने बढ़े हुए हाथ खींच लिये। नन्दकुमार सिर्फ़ उनके सहयोगी ही नहीं थे, उनके अफ़सर भी थे। प्लेटोंसे उठती हुई भाप नन्दकुमारको और गरमाये जा रही थी···

'अच्छा तो आलू आधी छँटाकसे भी फ़ी समोसे कम पड़ी। समझो कि एक पैसेकी आलू हुई और धेलेका आटा हुआ। दो पैसेमें घी और मसाला रख लो। साढ़े तीन पैसेका एक समोसा तैयार हुआ। फिर जब माल काफ़ी तैयार होता होगा तो यह समोसा दो पैसेसे ज़्यादा नहीं पड़ सकता। उसका तुम दो आना किस हिसाबसे लेते हो ?'

सामनेकी प्लेटोंसे पकौड़ियोंकी उठती हुई महक दावताकांक्षी मित्रोंको बेचैन कर रही थी। तीसरेसे न रहा गया। इस बार वह झगड़ा टालनेका सहारा लेता हुआ बोला—

'जाने दीजिए नन्दकुमारजी। फिर कभी इनसे तै करेंगे हम लोग।'

पर समोसेके अर्थ-शास्त्रके सामने नन्दकुमारको उस समय इन्द्रासन भी मोहित नहीं कर सकता था, इन बेचारी निरीह प्लेटोंकी कौन कहे ! मनसे बातको बढ़ाते हुए और ऊपरी 'डायलाग'से बात टालनेका अभिनय करते हुए वे बोले—

'नहीं वैसे कोई बात नहीं है। पर दामकी भी हद होती है। यह तो साफ़ ठगी है। और यह टोस्ट मक्खन क्या भाव दिया ?'

'पाँच आने पेयर। एक जोड़ा टोस्ट मक्खन सहित लीजिएगा तो पाँच आने पड़ेंगे।' बैरा निरीह भावसे बोला।

'पाँच आने ?' नन्दकुमार जैसे इसीका इन्तिज़ार कर रहे थे। प्लेटों और प्यालोंको एक बार तार सप्तकके बेसुरे जलतरंगकी तरह अपने घूँसेसे झनझनाते हुए वे बोले—'देखा साहब आप लोगोंने ? वाह जी वाह।

तो यह कहो कि तुमने रेस्तराँ क्या खोला है, पूरी लूट मचा रक्खी है। दस पैसेकी डबल रोटीमें कमसे कम आठ टुकड़े तो निकलते ही हैं। कहो हाँ।'

बैराके मुँहसे 'हाँ' न निकला तब साथके दोस्तोंने फँसे हुए गलेसे 'हाँ' कहा और बात आगे बढ़ी—

'तो साले हर टुकड़े सवा पैसेके पड़े। ज़रा-सा आपने उसे सेंक दिया और घुइयां अरबी मिली आधी टिकिया मक्खनकी छुआ दी। छः सवा छः पैसेका एक जोड़ा पड़ा। तुम भाई हद्द दो आना ले लो। पर यह तो साफ़ लूट है लूट।'

आस-पासकी मेज़ोंपर बैठे हुए लोगोंकी आँखें नन्दकुमारकी मेज़की तरफ़ घूम गईं। दूर काउण्टरपर बैठा हुआ मैनेजर कान खड़ेकर इनकी बातें सुनने लगा। दोस्तोंपर निराशाका एक वातावरण सा उतरा आ रहा था। नन्दकुमारका टोन ऊपर चढ़ रहा था और उनके मन बैठे जा रहे थे। आगेके कार्यक्रमके बारेमें वे आशङ्कित थे। बैरा भी कुछ घबड़ा गया। ऐसे अर्थशास्त्रीसे उसका पाला अब तक नहीं पड़ा था। उत्तर स्वरूप बोला—

'साब हमें जो कुछ सामान मिलता है हम तो वही सामान आपके सामने लाते हैं। आपको जो कुछ शिकायत हो उसे मैनेजर साहबसे कहिए। बुलाऊँ?'

'हाँ बुलाओ।' नन्दकुमारने कहा।

दोस्तोंका खून सर्द हो गया। दावतें कई खायीं थीं—कइयोंका प्रमोशन देखा था पर ऐसा मौक़ा पहिली बार आया था। गिरोहके नेताने कहा—

'जो कुछ खाना-पीना हो खाकर चला जाय।' यह तो साले ठग हैं ही।'

पार्टीके दूसरे सदस्य अपने नेतासे सहमति जताते इसके पहिले ही

नन्दकुमारने अपने स्वरको कुछ और ऊँचा करके श्रोतामण्डलीकी परिधि बढ़ाते हुए ललकारा—

'नहीं साहब, ये तो अँधेरखाता खुला हुआ है। दो पैसेका आलूका समोसा और दो आनेमें खुलेआम बेंच रहे हैं। कोई बोलता है नहीं, इसीसे सब तमाशा मचा हुआ है।'

रेस्तराँका वातावरण बदल गया। दूसरी मेज़ोंपर बैठे हुए लोगोंकी बोली और ठिठोली बन्द हो गई। सबके उत्सुक नेत्र नन्दकुमारकी तरफ़ लग गये। मैनेजर आकर खड़ा हो गया—

'कहिए साहब, क्या शिकायत है?'

'शिकायत क्या है जनाब! आप रेस्तरां चलाते हैं कि अन्धेरखाता खोले हुए हैं? दो पैसेका माल आप दो आनेका देते हैं?'

दूसरोंकी आँखें अपनी ओर लगी देखकर नन्दकुमारमें नेताके भावका उदय हो आया था उन्हें लग रहा था कि वे अपनी ही नहीं जनताकी भावनाओंकी अभिव्यक्ति कर रहे हैं।

मैनेजर बहुत देरसे इस मेज़से उठती हुई बातें सुन रहा था। बात समझते देर न लगी। उसका रुख कड़ा हो गया—

'देखिए हुज़ूर! मैंने आपको कोई न्योता देकर तो खाना खानेके लिए बुलाया नहीं। हमारी जितनी लागत आती है हम उसीके हिसाबसे अपना माल बेचते हैं। खुले-खज़ाने बेचते हैं, चोरी-छिपे नहीं बेचते। आपकी तबीयतमें आये तो बैठकर खाइए नहीं तो बख़ूबी तशरीफ़ ले जा सकते हैं। दरवाज़ा उधर ही है।'

'अच्छी बात है। हम तो इस तरहसे बेवकूफ़ नहीं बन सकते। इस ठगहारीमें हम नहीं फँसते। चलो जी—हमलोग कहीं और चलेंगे।'

उनकी टोनमें फिर नेतापनकी गन्ध थी। वे समझते थे कि उनके ऐसा कहनेसे कई लोग उठ खड़े होंगे, पर उनकी मेज़के अतिरिक्त और किसी मेज़पर हरकत न हुई। प्लेटोंकी पकौड़ियाँ और समोसे दफ्तरके

मातहतोंकी तरह 'आओ हमें खाओ' का मौन निमन्त्रण दे रहे थे पर नन्दकुमारने आनका सवाल बना दिया था। परसी हुई थाली खिंच जायगी, इसका मित्रोंको भान न था।

'हाँ-हाँ चलिए। किसी दूसरी जगह चाय पियेंगे।' कहते हुए तीनों सहयोगी उठ खड़े हुए।

'वह तो कहिए मैंने खानेसे पहिले ही दाम पूछ लिया नहीं तो ये जाने क्या दाम लगाते।' दरवाज़ेसे बाहर निकलते-निकलते नन्दकुमारने अपनी अगम-सोची-बुद्धिका परिचय दिया।

और कोई दूसरा अवसर होता तो उनके इन्हीं मित्रोंने उनकी इस बुद्धिमत्ताकी प्रशंसा की होती पर आज वे चुप रह गये। मेज़पर पड़े हुए सामानको आँखों-ही-आँखोंसे खाते-पीते वे बाहर निकल गये।

सड़कपर आकर नन्दकुमार बोले—

'यार! अब कहीं ठीक-ठाक जगह चलो।'

दावतके शौक़ीन दूसरे मित्रके आत्म-सम्मानको कुछ ठेस लगी थी। बोले—

'अब कलपर रखिए। आज तो पानी ही पीकर पेट भरा भरा-सा हो गया है।'

त्रिगुट्ट नेता बाज़ी इतनी जल्दी नहीं हारना जानता था—

'अब यहाँ तक आये हैं तो चाय पीके ही चलेंगे।'

नन्दकुमारने भी नेताके इस प्रस्तावसे अपनी सहमति जताई—

'हाँ-हाँ अब आये हैं तो कम-से-कम चाय तो कहीं पी ही लें। कहाँ रोज़-रोज़ आना होता है।'

सबके कान खड़े हो गये। यानी अब दूसरे रोज़ आनेकी आशा करना व्यर्थ है। और वे चारों दूसरे रेस्तराँकी तलाशमें लग गये।

ब्राह्ममुहूर्त्तकी देन

विना गुरुके ज्ञान नहीं मिलता। कुछ भी करना चाहें और उसके बारेमें आपको सर्वथा नये तत्त्व प्राप्त करने हों तो या तो किसी सद्गुरुकी शरण जाइए या फिर ज्ञानका कोई बोधिवृक्ष ही आपके हाथ लगे तो काम बने। अगर आप नौकरीपेशा हैं तो सुबह सात बजेसे लेकर दस बजे तकका टाइम ऐसा है जिसके बीचमें आपको अनन्त ज्ञानभण्डार मिलता है। कहा भी गया है कि वह ब्राह्ममहूर्त्त होता है और उसमें प्राप्त ज्ञानसे इहलोक और परलोक दोनोंका कल्याण होता है। सच मानिए, मैं अपनी श्रीमतीकी बड़ी कद्र करता हूँ! मैं भूलकर भी यह सोच नहीं सकता था कि उनमें काहिलीका कुछ माद्दा है, पर क्या कहूँ इस सात बजेसे दस बजे तकके सद्गुरु समयको, जिसने मेरा ध्यान मोहसे उठाकर इस ओर खामख्वाह आकृष्ट किया।

मुझे अपने आप ही कुछ खोया-खोया-सा लगता था, पर डाक्टरोंके कारण मैं कुछ भय-सा खाता रहता। मेरी श्रीमतीको बीमार रहनेकी हाबी है। डाक्टरोंसे उनका पूर्व जन्मका सम्बन्ध है। इस शहरके डाक्टरोंमें से भी बहुतोंको वे मामाजी, चाचाजी, ताऊजी और अंकिल बना चुकी

हैं। कोई डाक्टर ऐसा नहीं होगा जिसे मैंने दो-चार चेक न दिये हों। चेक पाकर यदि वे मामाजी हो भी गये तो, कहीं दूरसे रिश्ता निकल ही आया तो वह भला क्यों इन्कार करने लगे ? उन मामाओं और चाचाओं-की एक देन हमें मिली, वह यह कि मुझे तो हर कामन, अनकामन दवा-इयोंके नाम याद हो गये और मेरी श्रीमतीको उन रोगोंके, जिनका नाम आपने कभी सुना भी न होगा। मैं जब अपने मित्रोंके बीचमें दवाइयोंके नाम एक चतुर केमिस्टकी तरह गिनानेपर उतर आता हूँ तो वे मुँह बाये मुझे देखा करते हैं और मेरे मुँहको शून्यवत् आटोमैटिक ढंगसे तब खुलना पड़ता है जब वे बताती हैं कि 'आज डाक्टर टंडनने देखा था कहते हैं कि टैंगपेनीआइसोसिस हो गया है। चुपचाप रेस्ट करनेको कह गये हैं। उठना बैठना बिलकुल बन्द कर दिया है।' मैं कह बैठता 'तुमने कहा नहीं कि मैं तो ऐसे ही बहुत कम उठना-बैठना पसन्द करती हूँ। मुद्दत हो गये मुझे उठे हुए।' वे मेरे इस मज़ाकको भी गम्भीर बनाती हुई कहतीं 'नहीं जी ! वह कह रहे थे कि आपको शारीरिक परिश्रम बिलकुल नहीं करना चाहिए। दिलके पास कुछ खराबी आ गई बताते हैं।' हो सकता है कि आप यह सुनकर मुसकरा दें पर मैं भला दूसरोंकी बीमारीपर हँसूँ ? उसी दिन तो अनर्थ हो जाय।

फिर सुबह होती है। सुबहकी नींदसे मुझे भी खासी मुहब्बत है पर धीरे-धीरे कम्पटीशनसे घबराकर मैंने अपनी मुहब्बत छोड़ दी है। सात बजते-बजते मैं कान खोल देता हूँ (आँख चाहे न भी खोलूँ)। ग्वाला आकर निकल जायगा तो घर भरकी चाय मारी जायगी और बेबी भी भूखा रह जायगा और फिर प्रवचन भी, 'आप तो जानते हैं कि मेरी नींद ही नहीं खुलती। यह कन्हई भी कमबख्त इतनी देरसे आता है कि घर चौपट ही करके छोड़ेगा। आप नहीं उठना चाहते थे तो मुझसे कह देते मैं ही उठ जाती। पता नहीं कैसे आप भी इसी तरहसे सोने लग

गये ?' इसलिए, बेहतर यही है ग्वालेका उचित स्वागत कर लिया जाय ! पर अब चाय बनेगी कैसे ?

'सुनिए !'

और मैं सुनने लगता हूँ ।

'मैंने कन्हईसे रातमें ही कह दिया था कि भट्ठीमें और कोयला डाल दे ताकि सुबह-सुबह सुलगानेकी झंझट न रहे । मैं जानती थी कि वह तो देरसे आयेगा ही चाहे आप उसे फाँसीपर ही क्यों न लटका दें ?'

मेरे सामने कोयलेवालेका बिल फाँसीके फन्देकी तरह झूलता दिखलाई पड़ रहा है, कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा है । कान सुन्न पड़ गये हैं । तब तक आगे फिर वही वाणी ।

'पानी भी कहा था कि चढ़ा दे । पर शायद पानी तो सूख-साख गया होगा । तुम्हीं चढ़ा दो ज़रा-सा पानी, वहीं गगरेमें भरा धरा होगा । मैं उठ आती पर अभी यह बेबी जग जायगा तो तुम्हीं कहने लगोगे कि सुबह हुई और चें-चें, पें-पें होने लगी ।'

बहरलाल पानी चढ़ जाता है । मेरे ही कारण वे नहीं उठ रही हैं—जान गया ।

और तब तक हम दोनोंका शिकार—कन्हई—हमारा नौकर आ जाता है । पहिले उधरसे :

'कौन कन्हई ? तुम्हें काम न करना हो तो घरमें आते ही क्यों हो ? आखिर मुफ्तकी तनख्वाह कौन दे देगा ? सुबहसे बिना चायके बैठे हैं और तुम हो कि तुम्हें आनेकी छुट्टी तब मिलती है जब साहब दफ्तर चले जायँ ! तुम्हें यह भी नहीं सूझता कि घरमें कोई बीमार है । वाह जी वाह ! हमें तो ऐसा नौकर नहीं रखना है ।'

और फिर हमारी तरफसे :

'भई कन्हई ! ज़रा वक़्तसे आ जाया करो । तुम तो जानते ही हो

आख़िर काम-काजका झमेला लगा रहता है। और अगर न आ सको तो फिर उस तरह बता दो, हम कोई और इन्तज़ाम कर लें।'

चूँकि हजामत बनाते वक़्त मैं यह भाषण करता हूँ इसलिए न तो ज़्यादा क्रोध ही दिखा पाता हूँ और न लम्बा भाषण ही दे सकता हूँ। कन्हई बिना जवाब दिये तौलिया लाकर रख जाता है, अर्थात् वह नौकरी छोड़कर नहीं जाना चाहता और न अपनी आदत ही छोड़ना चाहता है। यानी यूँ कि मुझे सब कुछ स्वीकार करना ही होगा।

नहाकर नंगी देह तौलिया लपेटे मैं अपने बक्सको खोलकर स्वयं इस तरह ढूँढ़ रहा हूँ जैसे किसी चोरको दूसरेके बक्ससे कुछ माल हासिल करना है। दफ़्तरका वक्त नज़दीक आता जा रहा है। यह घड़ी भी कम-बख़्त ऐसी है कि सुबह सातसे दस बजेके भीतर इतनी तेज़ीसे दौड़ती है कि कुछ सूझता नहीं। वैसे फिर दससे पाँच बजे तक तो ऐसा काँख-काँख कर चलती है कि जैसे यही भूल जाती है कि घड़ी है। मगर क्या कहिए, इस सारे आलमकी जड़में यही कमबख़्त रहती है नहीं तो मुझे क्या पड़ी है कि मैं किसी दूसरेको अपनेसे बढ़कर समझूँ, चाहे काहिल ही क्यों न हो? काफ़ी कपड़े उलट चुकनेके बाद मैं चीख़ उठा,

'अरे, मेरी पीलीवाली कमीज़ कहाँ रखी है जी?'

'पता नहीं शायद तुमने पहन डाली हो या···शायद न पहिनी हो।'

'वही तो मैं पूछ रहा हूँ कि कहाँ है?'

'कहा तो।···अभी धोबीवाला गट्ठर तो खोला नहीं। पता नहीं मैले कपड़ोंमें पड़ी हो या फिर जो धुलकर आये हैं उनमें ही धरी हो।'

'अभी खोला नहीं उसे?' कुछ खीझ भरी आवाज़से बोल उठा। 'कम-से-कम कपड़े मिला तो लेना चाहिए···पता नहीं धोबी पूरे कपड़े लाया भी कि नहीं।'

'अरे ज़रा-सा वक़्त तो मिले तो खोलूँ मूँदूँ। डाक्टर टंडन कहते हैं कि बैठकर लिखा-पढ़ा मत करो। हिसाब मिलाने बैठूँ तो बस कमरमें दर्द

होने लगता है। चार पैसे बचाने चलूँ और उधर चालीसकी चोट पड़ जाय।...अब कल धोबी आयगा तो सब कपड़े ख़ुद ही मिलाकर धर देगा।'

बहस बेकार थी। उनके पास डाक्टर टंडनके सार्टीफिकेटका ज़ोर था और मेरे पास...! मेरे पास क्या है?

कमीज़ें ढूँढ़ना शुरू की। एककी बाँह फटी थी, एकके कालरपर धोबीने ही कुछ गेहरबानी कर दी थी, तीन कमीज़ोंके आगेके बटन ही गायब थे। कुरता निकाला, आगे सही-सलामत था पर पीछे चीर लगी थी। सोचा चलो अचकनके नीचे इसे दबा दूँगा। अचकन निकालकर चूड़ीदार पाजामेके साथ चढ़ा रहा हूँ। मारे गरमीके जान निकल रही थी मगर कुरतेकी लाज ढँकनेके लिए मुझे उसे चढ़ाना पड़ता है।

जल्दी-जल्दी खाना खा रहा हूँ। गरम खानेको मुँहमें सम्हालता हुआ कह बैठता हूँ, 'कमीज़की बटन तो ठीक कर दो भाई।'

'हाँ-हाँ कर दूँगी।...क्या कहूँ? वक्त ही नहीं मिलता है। दिनभर तो बस...क्या कहूँ? इस गिरस्थीका झंझट ऐसा पड़ गया है...बटन यह धोबी तोड़ ही लाता है, न जाने कितनी बार लगाया होगा, पर यह तो...

और मैं उनसे यह नहीं कह पाता कि धोबीने बटन अगर तोड़े भी थे तो आपने कुछ क्यों नहीं किया? एक तो उधर दस बज रहा है—फजूलकी बहसमें पड़कर मैं न तो धोबीका कुछ लाभ कर सकता हूँ और न अपना ही, और दूसरे उनको डाक्टर टंडनने शायद कहीं यह भी न बतलाया हो कि बटन टाँकना मर्ज़को और पास बुलाना है।

इसीलिए मैं अपने ज्ञानके बावजूद उन्हें काहिल नहीं कह पाता, बल्कि मैं तो यही समझनेकी कोशिश करता हूँ कि डाक्टरने उन्हें 'रेस्ट' करनेके लिए ही सलाह दी है।

पर वाह रे ब्राह्ममुहूर्त!!

दूसरोंकी स्वास्थ्य-रक्षा : आपके खर्राटे

आप ज़रूर खर्राटे भरते हैं पर आप यह माननेको कभी तैयार न होंगे ! हो भी कैसे सकते हैं ? आप जिस वक्त गहरी नींदमें सो रहे होते हैं और कल्पनामें अपनी प्रेयसीको अपने पीछे दुम हिलाते हुए घूमते देख रहे होते हैं, आपने अफ़सरको सपनेमें डाँट रहे होते हैं और चुनावमें जीतकर एसेम्बलीमें धुआँधार भाषण करनेके लिए अपनी मुट्ठियाँ (चारपाईपर ही) पटक रहे होते होंगे, उस वक्त आपको यह क्या पता चलता होगा कि आपके घरवाले, आपके साथ कमरेमें सोनेवाले कितनी बेचैनीसे करवट बदल रहे होते हैं—जैसे सबके सब किसी विरह-बानके मारे हों ! उनको अँधेरे कमरेमें यह लगता है कि जैसे दो बिल्लियाँ खौंखियाकर आपसमें एक-दूसरेकी मूँछें पकड़नेकी कुचेष्टा कर रही हैं—अँधेरेमें 'बिल्ल-बिल्ल' करते हैं मगर कुछ नहीं होता। कभी उनको यह लगता है कि रेडियो बिगड़ गया है और उसमेंसे सिर्फ़ सों-सों और खों-खोंकी लगातार आवाज़ें आ रही हैं, रेडियो बन्द करनेको उठते हैं, पर रेडियो बन्द ही मिलता है—कभी वे भ्रममें उठ-उठकर पाइप बन्द करने जाते हैं। पर किसी चीज़से कोई इलाज नहीं होता—कस्तूरी कुण्डल

बसै तोहिं ढूँढ़ै बन माँहि !! आपको क्या पता कि आपके पीछे लोगोंमें कितनी चेतना आ गई है और चाहे वह रेडियोका बटन ढूँढ़ें या 'बिल्ल-बिल्ल'का नारा लगायें उन सबसे उनकी समस्याका हल नहीं हो सकता। उन्हें चैन नहीं मिल सकता !

खर्राटे कई क़िस्मके होते हैं—एक तो वह जो 'आई जाई' हो—मामूली ढंगके 'खर्राटा सिंहों'से यह सुन पड़ता है—ज़रा-सी नाक दबा दें तो उनका खर्राटा दब जाता है, मगर 'खर्राटा-भट्टों'से यह संभव नहीं है। बताते हैं कि एक 'खर्राटा-भट्ट'के डेढ़ सौ गज़ व्यासके भीतर दूसरे लोग नहीं घुस सकते हैं ! जो लोग उस लक्ष्मण-रेखाको तोड़कर भीतर घुसते हैं उन्हें रात भर जागकर 'खर्राटा-भट्ट'की रक्षा करना ही हाथ लगता है।

खर्राटे यूँ बुरी चीज़ नहीं हैं बशर्ते कि आप अविवाहित हों और बस्तीसे दूर बसते हों तथा आपके पास कुछ भी माल-मता न हो ! इन तीनोंमेंसे यदि एक भी शर्त पूरी न हुई तो फिर ये खर्राटे आपको जीना दूभर कर देंगे ! विलायतमें तो आये दिन इन्हीं खर्राटोंको लेकर तलाक होते रहते हैं। इधर अपने देशमें भी तलाककी बीमारी चालू हुई है इसलिए खर्राटोंके प्रति आपको भी सचेत हो जाना चाहिए। पता नहीं भीतर और क्या कारण हो पर जब तलाककी बात उठे तो आपकी श्रीमती यह कहें कि मैं इनके खर्राटोंसे परेशान हूँ। सच मानिए कि तब आपको मुँह दिखानेकी भी जगह नहीं रहेगी। बस्ती या मुहल्लेमें रहते होंगे तो कुछ ही दिनोंमें देखिएगा कि आप मुहल्लेमें इतने बदनाम और 'नोटोरियस' हो गये हैं कि खुद आपको ही अपनी इस 'प्रसिद्धि'पर सन्देह होगा। लोग परेशान आपके खर्राटोंसे होंगे पर वे आपके चाल-चलनके बारेमें तरह-तरहकी खबरें उड़ायेंगे ताकि आप घबड़ाकर वह मुहल्ला छोड़ दें। यदि आपके पास पैसे काफ़ी हैं और साथ ही आप 'खर्राटा-भट्ट' भी हैं तो यक़ीन मानिए कि चोरोंको तो खुला निमन्त्रण है। खर्राटोंको चोर घरका बैरोमीटर मानते हैं। किसी घरसे यदि खर्राटे

उठने लगे तो आप समझ लीजिए कि वह घर अब बिलकुल सूने घरके बराबर है।

'खर्राटा-भट्ट' होनेपर लोग आपको निमन्त्रण देना पसन्द नहीं करेंगे। उत्सवों, जल्सों और गोष्ठियोंमें भाग लेनेके लिए आपको बुलाना वे तभी पसन्द करेंगे, जब किसी दूसरेको न बुलायें। अमेरिकामें एक क्लब खुला हुआ था जिसमें सभी खर्राटा लेनेवाले व्यक्ति सदस्य थे। नतीजा यह था कि वे पारी-पारीसे सोते थे और सिर्फ़ एक घण्टा प्रति व्यक्ति सोता था।

खर्राटा लेना एक सामाजिक अपराध है। हो सकता है कि इतना सुन लेनेके बाद आप दीन-हीन निरुपाय खर्राटा-भट्टकी तरह करुणाविगलित वाणीमें पूछें कि 'हे भाई! मैं तो नहीं जानता कि मैं कुछ इस तरहका अपराध करता हूँ। पर यदि अनजानेमें ऐसा हो जाता हो तो उसे बचानेका कुछ 'जतन' बताओ।' खर्राटोंसे निपटना बहुत सरल है। उसके लिए इतना दीन हीन निरुपाय मुँ बनानेकी आवश्यकता नहीं है। पहली बात तो यह है कि आप अपने मुँहपर पट्टी बाँधकर सोइए और अगल-बगल सोनेवालोंको यह आश्वासनदीजिए कि आपके खर्राटा भरनेपर यदि वे आपको कोंचें तो आप उठकर उनको मारने-पीटने न लगेंगे और न बुरा मानकर चल ही देंगे। दूसरा काम यह है कि सोते समय आप मुँहमें आटेका गीला हलुआ भरकर सोयें और सिर्फ़ नाकसे ही आरकेस्ट्रा बजानेकी चेष्टा करें। अपने पास शक्करका एक डिब्बा रखकर सोइए और अगल-बगलके लोगोंको आप यह निर्देश देकर सोयें कि जब भी आपका मुँह खुले वे उसमें एक चम्मच शक्कर डालनेके लिए पूर्ण स्वतन्त्र हैं। खर्राटोंका रोग ऐसा है जो अकेले आपके हटाये हटना असम्भव है। इसमें पास-पड़ोसके लोगोंसे—जनतासे सहायता लेना अनिवार्य है।

आप इस रोगसे कोशिश करके छुटकारा पाइए, अपने लिए नहीं, दूसरोंके लिए, उनकी चैनके लिए।

जय जनधारा

"ए. ए. ए. आदमी···ए. कुरता···ए. धोती रुको रुको···इधर कहाँ ?" दूररो चौकीदारकी आवाज़ आई।

मगर मोहल्लेके पण्डितजीको जब कहीं कथा बाँचने या भोजन करने जाना हो तो ऐसी-वैसी आवाज़ोंको वे ज्यादा महत्त्व नहीं देते। काफ़ी आगे बढ़ चुके थे। अब रुकना ठीक न था। डग और तेज़ीसे भरने लगे। चाहते थे कि चौकीदारकी जब तक दूसरी आवाज़ उन तक पहुँचे वह दूसरी चहारदीवारी लाँघ जायँ। पर चौकीदार अपनी चौकीपर बैठा न रहा। वह लपका और पण्डितजीकी नइया मझधारमें ही थी कि वह आँधी-तूफ़ानकी तरह उनपर चढ़ बैठा। पण्डितजी सकपका गये।

"सुनते नहीं हो ? चिल्लाय रहे हैं कि इधरसे कहाँ जाय रहो हो ?"

"कहीं जाय रहे हैं तुमसे क्या मतलब है जी ?" पंडित जीने साहसके साथ कहा।

"पढ़ते नहीं हो ? लिखा है कि 'आम रास्ता नहीं है।' इसे अपने घरका आँगन समझ लिया है ?"

चौकीदार डाँटनेके लिए अपनी देहाती बोलीमें उर्दूका टोन लानेकी चेष्टा कर रहा था। पर पण्डितजीपर खास प्रभाव न दीखा।

"रास्ता क्यों नहीं है ? सब लोग आते जाते हैं! सबैको क्यों नहीं रोकते ? सबै जनता इधरसे आती है।"

"जनताकी ऐसी तैसी! बड़े आये जनतावाले! चलो बड़े साहबके पास। अबहिन ठीक होइ जइहौ। अब देखें कौन इधर टाँग रखता है ? सरकारी स्कूल है। कोई तुम्हारी मौसीका घर नहीं है।" चौकीदारने पण्डितजीका हाथ पकड़ लिया।

पण्डितजीने सोचा--जाहिल आदमी है। इसके मुँह लगना ठीक नहीं है। अभी तो हाथ ही पकड़ा है, आगे क्या करेगा, इसका इतमीनान उन्हें नहीं था। बड़े साहबसे मुक़ाबिला, शास्त्रार्थ, क़ानूनी पेंच और फिर अन्तमें कथा बाँचनेका टाइम निकल जाना—यह सब पण्डितजीके लिए दैवी विपत्ति थी। मनमें ग्यारह बार शिवशम्भुका नाम जपा और इस विपत्तिसे लड़नेकी दूसरी तरकीब सोची—

"भइया, ऐसा किरोध क्यों कर रहे हो ? अरे हम बिराह्मण मनई! हमें निकल जाने देव। यही मोहल्लेमें रहते हैं, कथा बाँचने जाना रहा तो हमने सोचा कि इधरसे ही जल्दीसे निकल जायें। धरम पुन्नके काममें देरी हो जानेसे बेकारका पाप चढ़ता है। कोई अपने घरका काम होता तो हम इधरसे हरगिज न आते। पर अब इस काममें तुम भी क्यों पड़ते हो ? आगेसे हम ध्यान रखेंगे। यह लेव, दुर्गाजी की भभूती है। घरमें कभी कष्ट-वष्ट हो तो खिलाय देना। हाँ भइया, यही बात है कि वैसे चलनेको तो जहाँ कहो चलने को तैयार हैं। अरे, जब भगवान्के दरबार में एक दिन जाना है तो इस वक्त जिसके पास कहो उसके पास चले चलें। मगर यही बात है कि अपने मोहल्लेकी बात है और क्या कि चलनेको……।"

चौकीदारने हाथ बढ़ाकर भभूती ले ली। धरमका मंतर काम कर गया। जो एक दिन भगवान्‌के दरबारमें जायगा ही, उसे बड़े साहबके दरबारमें ले भी गये तो क्या और न ले गये तो क्या? बोला—

"कथाका मामला है। आज निकल जाव पण्डितजी! लेकिन अब फिर इधरसे कभी न आना जाना नहीं तो समझ लेव ठीक न होगा। बड़े साहब बहुत नाराज़ होते हैं।"

"अरे हाँ-हाँ, समझ गये। नाराज़ होनेवाली बात ही है।" पण्डितजीने अपने कार्यसे असहमति प्रकट करते हुए तत्काल ही उसे कर डाला यानी वे पलटकर चहारदीवारी लाँघ गये।

उक्त घटनाको काफ़ी दिन हो गये हैं। पर सीन अब भी आँखोंके सामने साफ़ है। बात यह है कि मेरे मकानमें इस खिड़की बनानेवाले-को 'झरोखे'से 'मुजरा' लेनेका शौक़ ज़रूर रहा होगा नहीं तो इस तरहकी 'सब-जग-उजागिर-खिड़की' बनवानेकी कोई ज़रूरत नहीं थी। दिमाग़ी चिन्तन और मनकी शान्तिमें यह खिड़की बहुत सीमा तक हर किरायेदार-को सहायक सिद्ध हुई होगी। खिड़कीके ठीक सामने सरकारी स्कूलकी इमारत है। उसके सामने खेलका मैदान है और मैदानके बाद यह सर-हद जिसकी दीवार और मेरी खिड़कीमें कोई दस गज़का फ़ासला होगा। स्कूलकी चहारदीवारी पहले नहीं थी। अक्सर फ़ुटबॉलकी गेंद धम्मसे आकर जब खिड़कीसे टकराती थी तो मेरा कलेजा मुँहको आ जाता था। खिड़कीकी छड़ें पकड़कर झूलना और कूदना—यह भी बहुत दिनों तक छोटे बच्चोंने अपना अधिकार समझ रखा था! उधर जनता भी स्कूलके इस मैदानको सभी प्रकारके सार्वजनिक उपयोगके लिए काममें लाती थी।

देखते-देखते हेडमास्टर साहबने उस मैदानके चारों तरफ़ लोहेका तार खिंचवा दिया ताकि लोग उधरसे आना-जाना बन्द कर दें। तार जब खींचा जा रहा था तो मोहल्लेके लोग आते थे, देखते थे और

मुँह बिचकाकर चले जाते थे। तारकी इस लक्ष्मण-रेखाको मान लेनेका अर्थ था—आधे मीलका फालतू चक्कर लगाकर शहरके दूसरे हिस्सेमें जाना। जनता यह माननेको तैयार न थी। नतीजा यह हुआ कि पहिले तो ऊपर-नीचेके दोनों तारोंको फैलाकर बीचमें इतनी जगह बना दी गयी कि ज़रा-सा झुककर हर आदमी निकल जा सकता था। पर इस फैलानेकी निरन्तर प्रक्रियामें वह तार दो-तीन जगहसे टूटकर झोल खाने लग गया। झोल खानेसे वह तार प्रतिबन्धका काम तो कम देता—हाँ कभी-कभी एकाध आदमी फँसकर गिर ज़रूर पड़ता था। जनहितमें जनताने वह तार भी निकालकर अपने-अपने घरोंमें डाल दिया। मैदान फिर निष्कण्टक ज्योंका त्यों हो गया। दो-एक असाधारण व्यक्ति, जो तार खत्म जानेसे आने-जानेमें संकोच करते थे अब फिर मैदानका इस्तेमाल करने लगे।

पुराने हेडमास्टर बदल गये। उनकी जगह नये हेडमास्टर आये। स्कूलमें नई रौनक आई। उन्होंने भी आते ही इस चौहद्दीकी बात सोची। इस बार वह चहारदीवारी पक्की बननी शुरू हुई। ईंट, गारा और सीमेण्ट-की जुड़ाई होने लगी। जनधाराको रोकनेके लिए बाँध बन रहा था। मैं अपनी खिड़कीसे देखता रहा। मोहल्लेवालों और राजगीरोंमें दोस्ती होती जा रही थी। मोहल्लेवाले दीवारकी मजबूतीके बारेमें जाँच-पड़ताल, इन्क्वायरी करते और राजगीर मोहल्लेवालोंसे अपनी अपनी चिलम और रोटीके लिए आग माँगते। आने-जानेवाले जहाँ तक दीवार बन चुकी होती उसके आगेसे होकर जाते—पर जाते उसी मैदानसे होकर ही।

आखिरकार दीवार पूरी हो गई। उसके ऊपरसे सीमेण्टका पक्का पलस्तर चढ़ाया गया। सिरेपर छोटे-छोटे शीशेके टुकड़े गाड़ दिये गये ताकि जो पार करना ही चाहे, उन्हें अपने पाँव और शरीरका कुछ ध्यान रखना पड़े। 'आम रास्ता नहीं है' का बोर्ड लगाया गया। राजगीर काम पूरा करके चले गये। अगले दिन जब मैंने खिड़की खोली तो देखा चहारदीवारीपरके शीशे बिन-बिनकर निकाल दिये गये थे। फिर दूसरे

दिन देखा कि दो-चार ईंटें भी खिसक रही हैं और सहसा दो-चार रोज़ बाद खिड़की खुलते ही देखा कि सीमेंटसे चुनी दीवारमें उसी तरह फिर एक दरार पड़ गयी है जिसमें होकर लोग पूर्ववत् आ जा रहे हैं। पुण्य-सलिला वेगवती जनधारा उसमेंसे होकर फिर फूट निकली है। पर नये हेडमास्टर साहब भी ख़ासे ज़िद्दी आदमी साबित हुए। मास्टर-ज़ात होनेके कारण, अनुशासनहीनता उन्हें सहन नहीं थी, चाहे विद्यार्थियोंकी हो या जनताकी। अतएव स्कूलके मालीकी ड्यूटी लगा दी गयी कि वह दिनभर उस चहारदीवारीकी दरारकी रक्षा करे और माली आरुणिका रूप धारे उस प्रवाहको रोके पड़ा रहा। आँख झँपते ही उस दिन पण्डितजी वह सीन खड़ा करके निकल भागे थे।

दीवार ठीक होते-होते, उसकी मरम्मतकी स्वीकृति आते-आते दस दिन लग गये। दस दिनोंमें, झाड़-झँखाड़, नागफनीका काँटा, ईंटोंका ढूहा—सभी जतन अपनाये गये पर कोई भी उस धाराको मोड़ न पाया। हेड-मास्टर साहबने उतनी दीवार फिरसे पक्की करायी। सीमेण्टकी जुड़ाई की गयी, फिरसे शीशेके टुकड़े लगाये गये और इस बार उसपर एक फ़िट ऊँचा कँटीला तार भी लगा दिया गया। 'आम रास्ता नहीं है' वाले बोर्डमें एक बाँधी हुई मुट्ठीसे निकली हुई तर्जनी भी पेण्ट करवा दी गयी। स्कूलके बरामदेमें चौकीदार बैठा दिया गया ताकि वह आने वालोंको पकड़ सके।

लगभग दस दिन तक एक तनावभरा सन्नाटा मुझे दिखायी पड़ा। मुहल्लेवाले आते और इतनी ज़बरदस्त क़िले-बन्दी देखकर वापस लौट जाते। चौकीदार दूरसे उन्हें डाँटता और अक्सर हाँक लगा देता। कुछ नहीं हुआ। मैंने समझा कि अन्ततः लोगोंमें लम्बा रास्ता तय करनेकी आदत पड़ ही गयी। जनता हार गयी।

पर ग्यारहवें दिन मेरा भ्रम दूर हो गया। सुबह खिड़की खोली तो देखा कि जनताने तार फिरसे उखाड़ लिया है। दिनमें स्कूलमें मुझे बड़ी

सरगर्मी दिखायी दी। हेडमास्टर साहब समझ गये कि हमला शुरू हो गया है। पुलिस आयी, ये आये, वह आये! इनकी गवाही, उनकी तलाशी—पर तार न मिला सो न मिला। तेरहवें दिन शीशेके टुकड़े भी ग़ायब और दीवारके बीचोबीच एक बड़ा सा छेद! छेद करनेवालोंने पुरानी जगहसे दस गज़ छोड़कर दूसरी जगह दीवारमें छेद किया था, जहाँकी दीवार अभी सीमेण्ट नहीं पा सकी थी।

राह फिर खुल गयी। शॉर्टकटका लोभ लोगोंको फिर उधरसे खींचने लगा। पर इस बार भयवश लोगोंकी ओरसे एक संशोधन किया गया था—यानी दस बजेसे पाँच बजे तकका स्कूली वक़्त वे बचाकर आते जाते थे। शेष समयमें वे उस रास्तेका इस्तेमाल करते थे—कभी चौकीदारकी रज़ामन्दीसे और कभी जब वह अपने क्वार्टरमें खाना बना रहा होता !!

अस्तु! छेद बड़ा होता गया। इस बार तो जैसे बाढ़वाली धारा थी। धीरे-धीरे फिर दीवार गिरने लगी। क्रान्ति इस बार अधिक सशक्त थी। सुबह-सुबह खिड़की खोली तो देखा आज पण्डित जी पैदल नहीं बल्कि अपने रिक्शेपर उस रास्तेसे होकर मैदान पार कर रहे थे। मैंने खिड़कीसे ही पुकारकर पण्डितजीको (उनके साहसपर) प्रणाम निवेदन किया। पर मेरी आवाज़को चौकीदारकी आवाज़ समझकर वह सुनी अनसुनी कर गये।

दिनमें इस संघर्षका सन् बयालीसी रूप उभरा। किसी दूसरे मोहल्ले-का एक बेचारा आदमी जाने कहाँसे आकर फँस गया और इस रास्तेका इस्तेमाल कर बैठा।

चौकीदार दौड़ा। उसने ललकारा! शॉर्टकटिया व्यक्ति भागा। हेडमास्टर साहब बरामदेसे तीन सहायक मास्टरोंके साथ दौड़ पड़े। दूसरी ओरका रास्ता बन्द करने और छेंकनेके लिए चिल्ल-पों मची। जो क्लास लगे हुए थे उनमेंसे भी लड़के बाहर निकल आये। बेचारा शार्टकटिया

चारों ओरसे फँस गया। अब हेडमास्टर साहब जालमें फँसे चूहेपर आक्र-मण करनेके लिए उतरे—

"तुमने क्या समझा है? तुम्हारे बापका घर है? तुम्हें अभी पुलिसमें दे दूँगा। क्यों इधरसे जाते हो? सारी बदमाशी भुला दूँगा।"

हेडमास्टर साहबके हाथमें लड़कोंको पीटनेवाला बेंत था! उसे वे बार-बार लपलपा रहे थे, पर मारनेकी हिम्मत नहीं पड़ रही थी।

"साहब मैं तो जानता नहीं था—"

"तो फिर भागा क्यों? हमको इतना क्यों दौड़ाया?"

हेडमास्टर साहब फिर बेंत लपलपाने लगे।

स्कूलमें भीड़ लग गयी। आदमी मुजरिमकी तरह खड़ा था। आवाज़ें आ रहीं थीं—

"इसे पुलिसके हवाले कर दीजिए..."

"अरे पुलिस-बुलिसमें कुछ नहीं करेंगे इसे यहीं पीटिए, यहीं।"

"इसका कुरता उतरवा लीजिए।"

और इस सबके विरोधमें एक पतली महीन आवाज़ आयी—

"साहब, हम तो जानते नहीं। दूसरोंको आते-जाते देखा तो रास्ता समझकर मैं भी आ गया।"

स्वरोंके उतार-चढ़ावकी अब शारीरिक मुद्राओंमें बदलनेकी पारी थी। हेडमास्टर साहब उसे पकड़कर कमरेमें ले गये! उग्र भीड़ फिर अपनी कक्षामें चली गई।

पर दीवार खुली तो खुलती चली गयी। ईंट भी उठती गयी। मोहल्लेवालोंके घरोंमें चुप चाप उन ईंटोंके सहारे नव निर्माणका नया अध्याय खुल गया! जिन्हें बचपनमें लुका-छिपी खेलनेकी काफ़ी आदत थी वह दिन-दहाड़े भी स्कूलके मैदानमें शार्टकट अपनाते रहे।

डेढ़ महीने बाद एकाएक संघर्षके लक्षण फिर दिखायी पड़े। एक दिन अपनी खिड़कीसे मैंने फिर राजगीरोंको टूटी चहारदीवारी उठाते हुए

देखा। सीमेण्टकी जुड़ाई फिर शुरू हो गयी थी। दीवार बनने लगी पर इस बार शीशेके टुकड़े नहीं लगाये गये! पुराना रास्ता जहाँ था वहाँ दोनों ओरसे उतरने चढ़नेके लिए सीमेंटकी सीढ़ियाँ बना दीं गयी! दूसरी ओरकी चहारदीवारीमें पार जानेके लिए एक छोटी सी गुमटिया बना दी गयी!

जनधाराका प्रवाह फिर अजस्र होने लगा।

'आम रास्ता नहीं है' को किसीने खड़िया मिट्टीसे काट दिया!!

मुलायम रुख

अपना साइनबोर्ड काला कोट, गलेका चमकदार सफ़ेद फ़ीता सब कुछ दुरुस्त कर लेनेके बाद भी मेरी वकालतकी गति वही मरियल टट्टूकी रही। ऊपरसे 'डोंट-केयर' दृष्टिकोण रखकर भी भीतर ही भीतर संसारके हर आदमीको अपना ही मुवक्किल बनानेकी अदम्य आकांक्षा हिलोरें मारती रही। पर इतना बड़ा और उदार दृष्टिकोण होते हुए भी जब एक भी 'सज्जन' व्यक्ति मेरा मुवक्किल बननेको तैयार न होता दिखा तो मुझे घबड़ाहट होने लगी। मेरे साथी वकीलोंने खासतौर पर बुज़ुर्ग वकीलोंने सलाह दी···"मुवक्किल नहीं मुंशी खोजो, मुंशी। अच्छा मुंशी हाथ लगा तो सात पुश्त तर जायेंगे।"

मुंशीकी तलाश मैंने सबकी सलाह मानकर शुरू कर दी। कचहरीकी तमाम मिसिलों, फाइलों, गवाहों, मजिस्ट्रेटों, वकीलों और मुवक्किलोंके बीच हर मुंशी मुझे धुरीकी कीलीकी तरह दिखाई पड़ता जिसपर ज़ाब्ता-क़ानून मुचलका, ज़मानत, सज़ा, छूट, क़ैद, फाँसी सब कार्नीवालके लकड़ीके घोड़ोंकी तरह नाचते रहते। इनपर सवारी करने या करानेके लिए मुंशी-की शरणमें जाना पड़ता। मुंशी ही कचहरी चलाता दिखाई पड़ेगा।

वही उसका नियन्ता है। उसकी सिफ़ारिश विना कोई मुवक्किल आपकी वकालतकी धाक न मानेगा, गवाह हाथ न आयँगे और मुक़दमा बन न पायेगा। और यहाँ तक कि अगर मुंशी न बतायें कि किस मुकदमेमें क्या है तो हम जैसा वकील अपना दफ्तर बटोरकर अपने घर चला जाय।

मुंशीकी महत्ता मान लेनेपर भी मैं स्वयं अपने लिए मुंशी न खोज पाया। मित्रोंने बताया……

'किसी बड़े वकीलके मुंशीसे मिलो। वह तुम्हें सही रास्ता बता देगा। छोटे वकीलोंके मुंशियोंको अपने ही वकीलके धन्धेसे फ़ुर्सत नहीं है।'

तक़्रू साहब शहरके खानदानी नामी वकीलोंमें-से हैं। उनका मुंशी… मुंशी नहीं, सेक्रेटरी कहलाता है। तक़्रू साहबकी तो दरकिनार उस सेक्रेटरी-से भी मिलनेमें लोग घबड़ाते हैं। छोटे-मोटे वकीलोंको तो वह डाँट देता है। तक़्रू साहबके एक-एक मिनटका वह हिसाब रखता है। भीड़मेंसे कुछको ही मिलनेके लिए छाँटता है। फ़ीसके पूरे पैसे पहिले ही रखा लेता है। किसीको मिलने देगा तो बड़ा एहसान जताकर। टाइम ख़त्म होते ही वह घण्टी बजा देगा और आपको बाहर निकाल देगा। इस तरहके दो ही चार मुंशी अपने शहरमें हैं। उनके बारेमें इतना सुन लिया था कि उनके पास जानेको मन ही नहीं चाहा…(आप चाहे कह लें कि साहस ही नहीं हुआ। होगा। कह लीजिए)।

मामूली सेकेंड क्लास वकीलोंके मुंशी 'मध्यम-मार्ग' के अनुयायी हैं। उन्हें अपने वकील और अपने मुवक्किल मुबारक। एक मुवक्किलका नाम अगर हमारे मुँहसे भूलकर भी निकल जाय तो वह उसे खोजकर अपने ही वकीलकी शरणमें ले आयेंगे। इन वकीलोंके मुंशियोंका कुछ भरोसा नहीं। एक बार जिसकी चलती हुई देख ली, बस उसीके साथ लग जायेंगे। उनके लगे लगाये मुवक्किल, लगे लगाये वक्तपर आ जानेवाले मुक़दमे और लगी लगाई हुई फीस-सब कुछ उनके साथ ही चलती है। इनमें-से एक मिल जाता तो वकालत खासी अच्छी चल

जाती। पर वह तो तब आते हैं जब आपकी पहिले ही से चलती हो। पर इन भलेमानुसोंसे कोई नहीं पूछता कि जब मेरी चल ही जायगी तो भला मैं इन्हें ही क्यों रक्खूँगा ?

तीन दिन तलाश करनेके बाद मैं बहुत निराश हो गया। वकालती पेशा-जिसे स्वतन्त्र पेशा समझकर मैंने पकड़ना चाहा था, जिसके सहारे छोटी-मोटी लोडरीके सपने देखा करता था, जिसके सहारे देश-सेवा वग़ैरहका अन्दाज़ बाँधा था, वह एक मुंशीके अभावमें टूटता नज़र आया। क़ानूनकी इतनी किताबोंमें न जाने कितनी बातोंका महत्त्व बताया गया था पर मुंशीका 'महातम' कचहरी-संसारमें आकर जाना। किताबोंने मुझे ऐसा भरमा दिया था कि जैसे जो कुछ हूँ मैं ही मैं हूँ। पर वह सब भरम धीरे-धीरे दूर होने लगा। बापजानने इतना बड़ा बँगला दिया, कमरा दिया, साइनबोर्ड दिया और नसीहत दी कि बेटा अब वकील हो जाओ। अतः मैं सब चीज़ें लेकर वकील तो बन गया, पर उन्होंने मुंशी न दिया था सो मुंशी न मिला। मैं उस भारी भरकम बरामदेमें अकेला बैठा हुआ था। फाटकसे मैंने घुटनेसे नीची शेरवानी और गन्दा पैजामा पहिने, सिरपर गरम किश्ती टोपी लगाये साइकिलके पीछे बस्ता बाँधे एक जीव अपनी ओर बढ़ता हुआ पाया। डूबतेको कुछ तिनकेका-सा सहारा मिला कहीं यह कोई मुंशी ही न हो !

हाँ, वह मुंशी ही थे। साइकिलको बाक़ायदा बरामदेकी सीढ़ियोंके सहारे खड़ा करके वह आगे बढ़े, सलाम किया और बोले...

"हुजूरको मुंशीकी तलाश है न ?

"जी हाँ। आपकी तारीफ़ ?'

'हुजूर ! बन्देको तो बिरिज नरायन कहते हैं। पच्चीस सालसे यही मुंशीगीरी ही कर रहा हूँ। ये आपके रतनलाल सिंह, जगबीर बहादुर, रामखेलावन लाल सब अपने ही बनाये हुए हैं हुजूर। अब ये है सरकार

उनको दूसरी तरहके मुक़दमे मिलने लगे हैं तो उसमें अपनी गुज़र नहीं होती। आपको ज़रूरत हो तो मेरी खिदमत हाज़िर है।"

जितने नाम मुंशीजीने गिनाये थे उनको मैं जानता हूँ। बारमें सब साथ बैठते हैं। पर एक वकील दूसरे वकीलसे मुंशीके बारेमें जाँच-पड़-ताल करना-करवाना पसन्द नहीं करता, इसलिए जो कुछ उन्होंने कहा था उसको सही कराना कठिन था।

मुंशीजी आगे कहते रहे····

'बस आपका इशारा भर चाहिए सरकार। जैसे मुक़दमे कहें, जैसे मुवक्किल कहें, जैसे गवाह कहें····सब आपकी नज़र होंगे। आप कचहरी सम्हालिएगा और मैं बाहरका मोर्चा। आपके तो बहुतेरे साथी-संगी यहाँ मजिस्ट्रेट होंगे। ये सब तरकीबें बायें हाथकी हैं। हुज़ूर! मेरी भी तो रोटी आपकी ही रोज़ीके साथमें है न!'

मुझे मुंशी चाहिए ही था। 'मेरिट' की बात उठानेका सवाल ही न था। मैंने उनसे कहा···

'अच्छी बात है। कलसे मेरे साथ काम कीजिए।'

मुंशी बिरिज नरायनने मेरे साथ काम शुरू कर दिया।

मुंशीजीने पहिले तो मेरा क्लास लेना शुरू किया। कचहरीकी पूरी जुगराफ़िया मुझे याद कराई, हर इजलासको फिरसे पहिचनवाया, हर मजिस्ट्रेटके बंगलेका नम्बर बताया, कइयोंके जन्मदिनकी तारीखें बताईं जिस दिन जाकर बधाई दी जा सके। मुक़दमे और गवाह बनानेके कुछ घरेलू नुस्खे बताये, हर मुवक्किलसे बात करनेका ढंग सिखाया, हर मुवक्किलका मनोविज्ञान समझाया, कैसी हालतमें कौन पैसा देगा और कौन नहीं देगा इसका गुर बताया, कौन-सा मुक़दमा किस अदालतमें कैसे लगवाया जा सकता है इसकी तरकीबें सुझाईं, और इस तरह मुझे एक सही वकील बनानेका उन्होंने पूरा इरादा कर लिया।

चूँकि क़ानूनकी किताबोंसे इन सारी बातोंकी कोई जानकारी नहीं हो सकती थी इसलिए मुझको मुंशीजीके ज्ञानपर ही निर्भर करना पड़ा।

अभी दो दिनकी बात है। चिकके भीतर मैं बैठा हुआ था। चिकके बाहर वे दो आदमियोंसे मुक़दमेकी बातें कर रहे थे। उनकी उससे पहिलेकी पहिचान न थी। मुंशीजी उसे समझा रहे थे...

'भाई देखो। पैसा जो तुम खर्च करोगे कोई मेरी जेबसे तो जायगा नहीं कि मैं चिल्लाऊँ। मुक़दमा भी तुम अगर हार जाओ तो कौन मेरे बापकी जायदाद निकली जा रही है कि मैं रोऊँ। पर तुम आगये हो तो अपना फ़र्ज है कि तुम्हें अच्छा वकील बता दूँ। कहते हैं कि भाग्य जैसे कराता है आदमी वैसे ही करता है। अरे, तुमको भगवान् ईश्वर लाया ही क्यों? खुद ही सोचना चाहिए। इसी बंगलेमें क्यों आये आखिर?'

असामीने अपना मुक़दमा मुंशीजीके सामने खोल दिया। उसे गवाहकी कठिनाई पड़ रही थी। उस आदमीके साथ जो दूसरा आदमी था मुंशीजीने उसकी ओर निगाह फेंकी—

'क्यों, ये तुम्हारे कौन हैं?'

'दूरके साले लगते हैं।'

'तब इन्हींको गवाह क्यों नहीं बनाते?'

'लेकिन ये तो वहाँ थे नहीं। इन्हें क्या मालूम।'

'अरे, मालूम अपने आप थोड़े ही हो जाता है। मालूम कराया जाता है। तुम्हारे रिश्तेदार होकर इस गाढ़े वक्तमें काम न आयेंगे तो कब आयेंगे। क्यों भाई ज़रा-सी बात कहनेमें तुम्हारा क्या चला जायगा?'

साथके आदमीने कहा....

'मालूम हो तो ज़रूर कह देंगे।'

मुंशीजीने अब तेवर बदले—

'अबे, मालूम तो हम करायेंगे। आखिर हम किसलिए इतना बड़ा तखत बिछाकर यहाँ बैठे हैं। इतनी बड़ी तख्ती वकील साहबकी लगी है

यह क्या अपने आप बड़ी हो गई। यहाँ पहिले एक छोटी-सी तख्ती थी। क्या समझे? धीरे-धीरे जब इतना नाम हुआ तब न जाकर तख्ती बढ़ी। क्या समझे? तो मालूम तो वकील साहब कराते हैं। जजमे जो कुछ चाहते हैं कलम पकड़वाकर लिखा लेते हैं। और यहाँ किसीमें इतना दम नहीं है।'

चिककी ओटसे मैंने देखा...दोनों आदमी मुंशीजीके और पास सिमट आये थे और अब ज़रा गुपचुप बातें होने लगी थीं। मैंने समझ लिया कि मुन्शीजीने आज एक चिड़िया गिरा ली। भावी मुवक्किलने अपनी बंडीकी भीतरी जेबसे एक चौपरता हुआ नोट निकाला और मुंशी-जीको थमा दिया। मैं अब सम्हलकर बैठ गया। समझ गया कि नाटकमें मेरा पार्ट आने ही वाला है। और वे चिक हटाकर अकेले भीतर घुसे—

'हजूर एक मुवक्किल है।'

'बुलाइए।' जल्दीसे अपने सामने एक मोटी किताब खोलते हुए मैंने कहा।

वे पहले और दोनोंको लेकर फिर भीतर घुसे। मेरा चेहरा [मुंशीजीकी सिखाई विद्याके अनुसार] रूखा हो गया था। वे दोनों चुपचाप खड़े थे और मुंशीजी कह रहे थे...

'हुजूर ग़रीब परवर हैं। यह सरकार, ग़रीब आदमी है। आप इसका मामला न लेंगे तो मर जायगा। सच्चा मुकदमा है सरकार! पर सच्चेको आजकल कौन पूछता है। जहाँ जाता है लम्बी फ़ीस सुनाई पड़ती है और काम भी झूठा। वह तो किसीने इसपर रहम करके आपका नाम बता दिया। अब सरकार! आपका ही आसरा है। गाँव वालोंने बहुत सताया है अब सहर वाले सता रहे हैं।' *

पहिली बार जब मुंशीजीने यही डॉयलाग सुनाये थे तब मैं सचमुच पसीज उठा था और मुवक्किलको इतना धीरज बँधाने लगा कि उसे मेरी सद्भावना और योग्यतापर ही सन्देह होने लगा था। उसके बाद अकेलेमें

मुझे मुंशीजीने एक सदेच्छु अभिभावककी भाँति बहुत डाँटा-फटकारा था और मुवक्किलोंके मनोविज्ञानपर एक सारगर्भित भाषण दिया था। इसलिए मैं इस तरहके संवादोंके लिए अब तैयार हो गया हूँ। दूसरा पक्ष जितना ही करुणा-विगलित होता है मैं उतना ही कड़ा रुख अख्तियार करता हूँ। जब उन्होंने वह वाक्य दुहराये तो मैंने रट्टू तोतेकी तरह गंभीर टोनमें कहा...

'ठीक है! ठीक!! पर आप तो मुंशीजी जानते हैं कि मैं कितना व्यस्त हूँ। मुझे फ़ुर्सत कहाँ है कि इस केसको लूँ? आप देख लीजिए डायरी। अगर कहीं जगह हो तो इनका नाम लगा दीजिएगा। आप लोग जाइए। मुंशीजीसे बातें कीजिए। मेरे पास वक्त नहीं है।'

मुंशीजी 'बहुत अच्छा, बहुत अच्छा।' कहते हुए उन दोनोंको लेकर फिर चिकके बाहर निकल गये और उसी तख्तपर बैठकर बातें करने लगे। मैं जमुहाइयाँ लेकर कुर्सीसे उठा और चिकके पीछेसे कान लगाकर बातें सुनने लगा।

उन्होंने मेरे कड़े रुखको मुलायम करनेके लिए मुवक्किलसे पचीस रुपये फ़ीसके अलावा वसूल किये। उसे मेरा कड़ा रुख देखकर ही अपनी जीतका विश्वास होने लगा था। मुंशीजीने उसे फिर सही वक्तपर आनेके लिए कहकर विदा किया। थोड़ी देर बाद मुंशीजी मेरे पास आये और फ़ीसके आधे रुपये सामने रखकर बोले...

'बाक़ी रुपये केस हो जानेपर देगा। पर हुज़ूर। आज आपने बिलकुल सही रुख अख्तियार किया। बड़ा असर होता है मुवक्किलपर इसका। बस ऐसा ही रुख ये तक्रू साहबके वालिद रखते थे। क्या दबदबा था उनकी वकालतका भी—कि यही रुख मैंने जगबीर बहादुरको सिखाया था। देखिए आज दोनों हाथसे बटोर रहे हैं।'

मैंने अच्छी फ़ीसके वे रुपये गिनकर जेबमें रख लिये। इस समय

मुवक्किलके भविष्यकी चिन्ता न मुझे थी और न मुंशीजीको। मेरी निगाहें उनकी उस जेबकी ओर जा रही थी जिसमें 'मेरा-रुख़-मुलायम-करनेवाले-पचीस-रुपये' पड़े थे।

पर मेरी ज़बान मुंशीजीने बन्द कर रक्खी है। रुख़ मुलायम करनेके पचीस रुपये मुंशीजीको ही मिल सकते हैं। मैं अगर अपना रुख़ मुलायम भी कर दूँ तो पचीस न मिलेंगे।

ऐसे रुखके साथ एकबार मैं बिना मुवक्किलके जी भी लूँ पर बिना अपने मुंशीजीके साँस चलेगी अब इसका विश्वास नहीं रह गया।

हवाई कलाबाज़

हवाई कलाकार और हवाके कलाकार आजकल बहुतायतसे मिलते हैं मगर जब हवासे लड़ना भी एक श्रेष्ठ कला मानी जायगी, उस समय हमारे गाँवकी लच्छो दीदी सबसे बड़ी कलाकार साबित होंगी। अपनी इस तेज़ मिजाज़ीके बावजूद वे गाँवभरमें दीदीके ही नामसे मानी जानी जाती हैं। शायद इसका कारण यह है कि सब लोग उनकी ज़बान-का लोहा मानते हैं। और आजका युग भी ज़बानवादी है। जिसकी ज़बान चलती है उसीका नाम चलता है। जिसके पास ज़बान है, उसीका जहान है। ज़बानी जमा-खर्चसे दुनियाका व्यवहार है और ज़बानी ढंगपर ही प्रेमियोंका व्यापार है। क़िस्सा यूँ समझिए कि बस ज़बानका गुन गाते ज़बान थक नहीं सकती। इसीलिए कैंचीकी तरह अपनी ज़बान चलानेवाली लच्छो दीदी गाँव भरमें गुनागर कहाती थीं। लच्छो दीदी-की लच्छेदार बातोंसे,सारा गाँव परिचित है। उनका यही गुण सबकी चर्चा-का विषय रहता है। सब उनकी बातोंको सुनकर चिढ़ जाते हैं मगर फिर भी बिना लच्छो दीदीके उनका दिन कटना मुश्किल है।

लच्छोके पति पहिले शहरमें किसी वकीलके मुंशी थे। घरकी खेती-बारीको सम्हालनेके लिए अब गाँव चले आये थे। दिन भर खाली वक्त-में गाँवके लोगोंकी चिट्ठी-पत्री लिखकर वे कुछ पैदा कर लेते थे। लच्छो यूँ तो बड़ी पतिव्रता थीं····बिना मुंशीजीको पानी पिलाये ख़ुद जल नहीं पीती थीं। मुन्शीजी भी अपनी बीबीको बहुत चाहते थे लेकिन इस आदत-से बहुत परेशान रहते थे। शहरमें बीबियोंका नाम लेकर पुकारनेका प्रच-लन है। मुंशीजीने एक दिन यूँ ही लच्छोको पुकार दिया····

'अजी ओ सुनती हो। ओ लच्छो देवी।'

लच्छो देवीके लिए इतना बहुत था कि कोई उनका नाम लेकर पुकारे। क्रोधका पारा चढ़ गया···

'का है लच्छो देवी, लच्छो देवी लगाये हौ। इत्ती उमर होय आई और पुकारै कै सहूर न आवा।'

मुंशीजी डर गये···

'अरे भाई, बात यह है···'

लच्छो दीदीकी ज़बानके साथ अब हाथ भी चलने लगा था···

'तोहार भाई बहिन हियाँसे बहत्तर कोस पै बैठे हैं। जान्यौ। हम होई तोहार मेहरिया। वहिसे तनी सीधे मुँह बात कीन करौ। आखिर हम पूछित है कि यतने बड़े मोहल्ला मा केकर मनसेधू अपनी मेहरिया कै नाउँ लैके पुकारत है? कि तुहीं चल्यौ लच्छो देवी, लच्छो देवी करै। हुँ हुँ!!'

'अजीब आदमी हो! अरे भाई····'

'हे देखौ। हमका अजीब सजीब न कह्यौ, कहे देइत है। हाँ।' और फिर लच्छो देवी सहसा भावुक हो उठीं····'हमका यहि घर मा सहत-सहत बहुत दिन ह्वैगे। बस बहुत भवा। अब हमका जो कुछ कहिस तौ अच्छा न होये। कहे देइत है।'

'तुम तो हवासे लड़ती हो। गाँवके लोग ठीक ही तो कहते हैं। बात तो पूरी सुनती····'

मुंशीजीके इस वाक्यने तो आहुतिका काम किया····

'हाँ-हाँ हम तौ हवासे लड़तै हन। तुहीं तौ हौ एक ठे पवन देउता। गाँवके लोग आखिर हमार बुराई तूसे न करिहैं तो केसे करिहैं? उनके हमार तौ सौतिया डाह है न?····ए मुंसी।····आखिर हमार नाउँ यहि तरहसे बदनाम करै मा तुमका का मिल जाए? जानि लेव चार दिन घर मी चूल्हा न जले। बहुत भवा। हां ऽऽऽ।'

मुंशीजीकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई। कुछ खिसियाये हुए-से स्वरोंमें कहने लगे····

'अजीब मुसीबत है। बात करना मुश्किल है। ज़रा-सा ज़बान खोलो तो तुम काटने दौड़ती हो। आखिर मेरी बात पूरी सुन····'

दाँव पाकर लच्छो दीदी फिर झपटीं····

'अरे तोहार जियहा तो बहुत बढ़त जाय रहा है। अबहिन लड़ंका बतावत रह्यौ अब तौन कुतिया कहत हौ। मने हम जेका पाइत है तेका कटइन दौड़ित है। का हो मुंसी हमका काटै खातिर कुछ और नाहीं रहि गवा है?

मुंशीजीको खिसियाहटमें भी हँसी आ गई····

'फिर वही जाहिलपनकी बात····'

'पुनि उहै बात किहे जात हौ। सरिहन गरियावत हौ और उप्परसे हँसत हौ। सरम नाहीं आवत। अरे हम कहित है कि हम पढ़ी-लिखी नाहीं हन भाई, हमरे लेखे सब गँवरई आय। मुला तू तौ पढ़े-लिखे हौ। तू कौने बिरता पै एँठिके बोलत हो?'

मुंशीके सामने अब कोई रास्ता नहीं था, बोले····

'ले भाई। हम चुप हैं।'

लच्छो हर तरहके एटम बमोंके लिए तैयार रहती है। ऐसा भी क्या योद्धा जो किसी वारको ऐसे झेल जाय।

'चुप हैं? अरे तौ हमका का मुँह देखै खातिर बोलायौ है? आखिर जब चुपायके बैठबै मंजूर रहा तो हमार नाउं कौनों परमात्मा कै नाउं तौ है नाहीं, जौन गोहरावै लाग्यौ। कौन बिपत पड़ि गई रही तोहरे उप्पर?'

मुंशी चुप्पी साधे रहे। लच्छोने फिर पैंतरा बदला···

'तो न बोलौ। ई कहौ कि झगड़ा बढ़ावा चाहत हौ। अरे तू। तू पाओ तौ आसमान माँ लुत्ती लगाय देव। ऊ तौ दयू हमरै पाथर कै करेजा दिहे है जौन तोहार ई कुल रंग देखे जाइत है।'

मुंशीने फिर भी आवाज़ न निकाली। लच्छोने रङ्ग बिगड़ते देखकर अपना स्वर कुछ बदला···

'आखिर हम पूछित है क काहे खातिर बोलाए रह्यौ। का हम जान लेब तौ कौनौं नुकसान होइ जाए?

मुंशीजीने अवसरका लाभ उठाते हुए कहा····

'तुम्हारे चाचाके घरसे बुलावा आया था। मुन्नूका मूंड़न है। जाना हो तो चली जाओ'

लच्छोपर इससे बड़ी चोट नहीं हो सकती थी।

'अरे मेरी मइया। यही बात कहैका रही तौ इत्ती लड़ाई-झगड़ा बिना काम नाहीं चल सकत रहा?····हम तैयार होइत है। हमका भेजि आऔ। चलौ। अब पहुड़ै कै काम नाहीं है। उठौ चलौ।'

अब लच्छो दीदीका दूसरा नक़शा देखिए। लोग जिस बातको सिर्फ़ हाँ या ना कह कर टाल देंगे वह लच्छोके लिए भाषणका विषय बन जाता है। पूर्व जन्मोंमें यदि आपका विश्वास हो तो समझ लीजिए कि पिछले जन्ममें वे या तो एक नेता थीं या किसी स्कूलको मास्टर। दोनोंके संस्कार उनमें थे। एक मिनटकी बातपर पूरे एक घण्टे ज़बान माँजनेकी आदत थी। जानते हुए भी कि लच्छो अपने घरका सामान कभी माँगनेपर नहीं

देती, पड़ोसिनें अक्सर उनके यहाँ सन्देश भेजती रहती हैं। पड़ोसकी रधिया जब लच्छोसे धान कूटनेके लिए मूसल माँगने पहुँची तो लच्छो दीदीने उसे अपनी ज़बानके सहारे फिरकीकी तरह नचा दिया। राधाका इतना कहना ...

'काकी कहिन हैं कि तनी लच्छो दीदीके घरसे मूसर लै आओ।'

कि लच्छोका क्रोध भड़क उठा...

'मूसर ? तोहरे घरे मूसर काँड़ी नाहीं है का ?'

राधा बोली

'है तो मगर....'

'है तो फिर का करै खातिर लच्छोके घरे आइके ठाढ़ होइ गयू महारानी। आखिर अपने घरै कै चीज तौ मजेसे बक्सा ताला मा बन्द कै के सब जने धरे रहौ, औ लच्छो कै सामान सारा गाउँ ब्यौपरै। वाह बिटिया वाह। हाँऽऽ।

'नाहीं दीदी, हमरे हियाँ कै मूसर...'

'तोहरे हियाँ कै मूसर...मँगनी गवा है। इहै ना ? वाह। अपने घर कै चीज तौ दुसरन कै दै के ब्यौपार करौ, औ बहिनी लच्छोके मूसर माँ जानौ पैसा थोड़ै लागत है। अरे बिटिया। जब दिना भर मुंसीजी आपन कलम घिसत हैं तब कहूँ हाथ माँ पैसा देखैका मिलत है। वहि पैसा कै खुआरी ई तरह तौ नाहीं कीन जाय सकत।'

आर्थिक सन्दर्भ वाला यह भाषण सुनकर राधाकी हिम्मत एकदम चीं बोल गई। वाक्य उसने पूरा कर ही दिया...

'दादी कहिन हैं कि हमरे घर कै मूसर टूटि गवा है...तौनेसे हियाँसे मँगवाइन हैं...'

लच्छोने भी पैंतरा बदला...

'टूटि गवा ? टूटि गवा तौ पहिलेन काहे नाहीं कहिस ? का तोरे मुँह माँ घोईं लागि रही ?

राधाने प्रतिवाद करना चाहा···

'पहिले कहबै न दिहयू दीदी।'

'अरे तौका हम तोहरे मुँह माँ बैठि जाइत। हाँ। अरे बिटिया। कहब-सुनब सब अपनेन मुँहसे होत है। अस बोलै बतलाय या जियु न चोरावा करौ।'

'वाह दीदी। हमका कुछ कहैका छोड़बे न किहयू। उल्टे तू हमहिन का···'

लच्छोने फिर बिगड़ कर कहा···

'अरे होइ गवा···तैं तो बहुत जबान लड़ावै लागि है।'

राधाने बात बिगड़ते देखकर फिर मूसलका टॉपिक चलाया···

'तौ मूसरके खातिरका कहि देब ?'

लच्छो दीदीने समापन भाषण दिया···

'मूसर हमरे घरे नाहीं है। हम तौ खुदै माँगिके काम चलाइत है। तूका कहाँसे देई ? हमरे घरे मूसर ऊसर नाहीं है···चलौ···हाँऽऽऽ'

लच्छो दीदीका यह हाल देखकर भी उनकी पड़ोसिनें उनसे चुहल करनेसे बाज़ नहीं आतीं। लच्छो दीदी और मुंशीजीका सम्बन्ध उन सबके लिए एक कौतूहलकी वस्तु रहती—

'का हो लच्छो। सुनित है मेहरारू मनसेधू मा आजकल यकौ घरी नाहीं निभत ? बातका है ?'

लच्छो ख़ुद मुंशीजीको चाहे जो कह डालें लेकिन मजाल क्या कि कोई दूसरा एक शब्द कहकर निकल जाय···

'देखौ चम्पा। जब हम तोहरे मनसेधू मेहरारूके बीच माँ नाहीं बोलित तौ तू भला कहाँसे हमार मरमहतिन बनिके आयू है ?'

चम्पा भला क्यों मानती।

'झगड़वा कौनी बात पै कल भवा रहा ?'

'कौनियु बात पै भवा होय कि न भवा होय। वै हमार मनसेधू होय

कि तोहार ? आखिर तू हमार सास होओ कि जेठानी ? तूका का पड़ी है ?'

'अरे बहिनी। हम तौ आयन तोहार हाल-चाल पूछै औ तू गरियावै लाग्यू ।'

लच्छो तो जैसे तुली बैठी थी····

'अरे चलौ बहिनी। हमका अब देर न पढ़ाऔ।···होइगा।···मोरे घरे कै किस्सा कौनौं सत्यनारायण बाबा कै परसाद न आय कि चार घरे बाँटके तूका सान्ती मिले। चलौ आपन राह पकड़ौ···।'

चम्पाने चादर ओढ़ ली। निकलते-निकलते चमककर बोली—

'जाइत है। हुँ हुँ···जेका बाँटेका होए ऊका तूसे पूँछके बाँटे ?'

दरवाज़ेपर खड़ी होकर लच्छोने भागते हुए शत्रुपर वार किया—

'जाव-जाव बहिनी। बाँटि आओ सगर कैती कि लच्छो मुंसीका छोड़ि रही हैं। तोहरे बाँटे मनई न जाने। हमरे करमनसे मनई जाने···हाँ···।'

रोज यही क्रम चलता है। न लच्छो थकती है और न मुंशीजी और न उनके पड़ोसी। लच्छोकी कलाको जब तक मान्यता न मिलेगी तब तक उनका यह प्रयास नहीं टूटता दीखता।

उनकी कहानी : लिपस्टिककी ज़बानी

मैं नहीं मान सकती कि आपने मिस चैटरजीका नाम नहीं सुना। शहरके जितने लोग साहित्य, संस्कृति, कला और संगीतमें रुचि रखते हैं वे उन्हें न जानते हों, ऐसा भला कौन माननेको तैयार होगा। कोई सांस्कृतिक उत्सव हो, सङ्गीत-सम्मेलन हो, वीमेन्स कान्फ्रेन्स हो, पेंटिंग इक्जीबीशन हो—सबमें आप मिस चैटरजीको चरखीकी तरह नाचती पाइएगा। आप बिना पूछे नहीं रह सकते कि यह जो इतनी कूद-फाँद मचा रही हैं, भला कौन हैं ? निश्चित ही आपको मिस चैटरजीका जवाब हर स्थानपर मिलेगा। और यह जो आप उनके कन्धेसे लटकता हुआ एक वैनिटी बैग देख रहे हैं न, यही मेरा घर है ! आज छः सात महीनेसे ऊपर हुए होंगे जबसे मैं उनके बैगमें बराबर मौजूद हूँ। बेड रूमसे बाहर निकलकर किसीसे बातें करनेके पहिले उन्होंने मुझे न चूमा हो, ऐसा मुझे याद नहीं पड़ता ! कहीं बाहर जाते हुए वे एक बार अपना मनीपर्स भूलकर जा सकती हैं, पर मेरा उनका चिरन्तन सम्बन्ध आजतक नहीं छूटा।

मिस चैटरजी हैं तो रंगकी गोरी पर उनकी सफ़ेदी या जर्दीमें एक

अजीब-सा चिट्टापन है जिसपर आदमीकी निगाहें पड़ते ही साफ़ फिसल जाती हैं। फिसलती हुई निगाहोंको भटकानेके लिए ही वे मुझे अपने होठों-पर रगड़ती हैं। शायद वही एक जगह है जो अपनी अतिरञ्जनाके लिए आँखोंको पकड़ लेती है! वरना मिस चैटरजीका डेढ़ सेरका जूड़ा, बेलेके फूल, हँसते हुए अपने अंगोंको हिला-हिलाकर बोलना लोगोंको उतना खींच नहीं पाता। लिपस्टिक लगे होठोंको मिस चैटरजी कई एङ्गिलोंपर नचा सकती हैं जिन्हें देखकर आप भरतनाट्यम्की मुद्राएँ भूल जायँगे। जब वे अपने होठोंको इस अभूतपूर्व ढंगसे नचाती हैं तो उसमेंसे अंग्रेज़ीके वाक्य निकलते हैं। वे कई तरहकी अंग्रेज़ी बोल सकती हैं। जब वे अपने होठोंको भरत नाट्यम्के ढङ्गपर घुमाती हैं तो उनसे ऑक्सफोर्ड उच्चारण निकलता है, जब वे उन्हें कत्थक नृत्यकी स्टाइलपर घुमाती हैं तो उनसे अमरीकन उच्चारण आने लगता है और जब वे उन्हें लोकनृत्योंकी शैलीमें 'फ्री मूवमेण्ट' देती हैं तो उनसे विशुद्ध हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी फूट पड़ती है। अपने इन उच्चारणोंका प्रयोग वे आदमी देखकर करती हैं, पर इन उच्चारणोंका लाभ उन्हें पब्लिक मीटिङ्गमें प्रायः तालियोंके रूपमें मिलता रहता है।

मिस चैटरजी बहुत बड़े बापकी बेटी हैं और इतने बड़े बापकी बेटी हैं कि उन्हें करनेके लिए कुछ भी नहीं रहता। नगरकी सोशल सर्विस, वीमेन्स लीग और कल्चर सोसाइटीमें ही वह अपना मनोरञ्जन कर पाती हैं। मिस चैटरजीकी ऊँची एड़ीकी सैंडिलें, अधकटे बाल, अधपेटा ब्लाउज और रेशमी साड़ियोंको देखकर लोगोंको भ्रम हो सकता है कि यह विदेशी महिला हैं। पर मैं जानती हूँ कि उन्हें अपनी कल्चरसे कितनी मुहब्बत है। न जाने कहाँ-कहाँ घूम-घूमकर उन्होंने भारतीय नारी और भारतीय संस्कृतिका नारा बुलन्द किया है। किसी भी कल्चरल जल्सेके लिए उन्होंने इक्यावन रुपयेसे कमका चन्दा नहीं दिया। पर वे यह पसन्द नहीं करतीं कि किसीके सामने भद्दे ढङ्गसे प्रस्तुत हुआ जाय,

इसीलिए जब चन्दा माँगनेवाले आते हैं तो वे बीच-बीचमें जाकर अपने होठोंकी पतनशील लालीपर मुझे रगड़ आती हैं। हर चन्दा माँगनेवालेसे ये बराबर अपनी 'कल्चर'के बारेमें कुछ-न-कुछ बातें ज़रूर करती हैं।

आप कभी उनके ड्राइङ्ग रूममें आइए। हो सकता है कि आपको सहसा किसी अजायबघरका भ्रम हो जाय। पर महाशय, यह उनके कलाप्रेमका ही नमूना है कि हर तरफ़ ख़ूबसूरत सागौनी मेज़ोंपर टूटी-फूटी सुराहियाँ, मिट्टीके मटके और अङ्ग-भङ्ग मूर्तियोंके सिर, पैर, कान, टाँग अलग-अलग दिखाई पड़ेंगी। सबके पास छोटे-छोटे शीशेके सुनहरे फ्रेमोंमें उनका इतिहास और प्राप्ति-स्थान लिखा हुआ है। बड़े-बड़े शीशेके गिलासोंमें मेंढक, छिपकली और साँप स्पिरिटमें भरे रक्खे हुए हैं। इन्हें मँगवानेके लिए प्राच्य प्रदेशकी एक विशेष यात्राका प्रबन्ध मिस चैटरजीने किया था। बुद्धकी मूर्तियोंके कितने रूप आपको दिखाई पड़ते होंगे! मिस चैटरजीको जितनी मुहब्बत लिपस्टिकसे है, उतनी ही बुद्ध की मूर्तियोंसे! मैं तो उस दिनका इंतजार कर रही हूँ जब उनके हाथों दोनों चीज़ें एक दूसरेसे मिलेंगी। बीच-बीचमें आपको मिस चैटरजीके यह चित्र भी दिखाई पड़ेंगे जो उन्होंने शान्तिनिकेतन और अरविंद आश्रममें खिंचवाये थे। देशका कोई हिस्सा उनके दौरेसे बचा नहीं है।

मिस चैटरजीकी शादी अभी तक नहीं हो पाई है और आगे भी हो पायेगी, इसमें मुझे सन्देह लगता है। इन्हें अपने मनका 'पार्टनर' नहीं मिल पाया है। पर इसके बावजूद अपने रंगे चुने होठोंको भरतनाट्यम्की आड़ी मुद्राओंमें घुमाकर जाने कितने दर्जन लोगोंको वे 'डार्लिंग' कहकर पुकार चुकी हैं। बापकी इजाज़त है कि लड़की अपने मनका पार्टनर ढूँढ़े और इसके लिए वह चाहें जितने लड़के ट्राई करके देख सकती हैं। इसके लिए बापकी ओरसे मोटरकार, अनन्त चाय पार्टियाँ और अकेले घूमने-फिरनेकी पूरी छूट मिली हुई है। पर मिस चैटरजीको कोई पसन्द

नहीं आता। अपनी पसन्दके क्षेत्रको विकसित करनेके लिए वे अखबारके द्वारा अपना रोमांस-फिक्स करती हैं। शहरके नये आई० ए० एस०, यूनीवर्सिटीके नये लेक्चरर, और सोसाइटीमें उठने-बैठनेवाले हाई क्लास बैरिस्टरोंकी पूरी लिस्ट अख़बारसे वे रोज़ सुबह छाँट लिया करती हैं। इतना कर लेनेके बाद किस तरह उन्हें चायपर बुलाया जाय, किस तरह उनके साथ पिक्चर देखी जाय, किस तरह मेरीन ड्राइवकी सैर हो, किस तरह उसके रोमांस-ज्ञानका और मिस चैटरजीके प्रति वफ़ादार होनेका 'टेस्ट' लिया जाय—यह सब उन्हें अच्छी तरह मालूम है। इस पूरी लम्बी क्रमिक परीक्षामें सभी लोग एक न एक जगहपर फेल हो ही जाते हैं और वहींसे मिस चैटरजी दूसरे आदमीको चांस देती हैं। यूँ वे एक साथ चार-पाँच रोमांस चलाती हैं। प्राथमिक महत्त्ववाले व्यक्तिके फेल हो जानेपर गौण प्रेमी उसका स्थान ग्रहण कर लेता है। मिस चैटरजीके लिए यह कार्यक्रम बहुत उलझावक सिद्ध होता है।

दर असल इस कार्यक्रमसे जो समय बचता है वही वक्त मिस चैटरजी कला-कलाके लिए लगाती हैं। पर उस कामको भी वह इतनी लगनसे करती हैं कि सरमें चाहे दर्द हो, पर वे सांस्कृतिक कार्यक्रमों या महिला उत्थान आन्दोलनोंमें भाषण देनेके लिए ज़रूर जाती हैं। अपने ईटन क्रॉप बालोंको झटका कर भाषणमें वे बराबर कहती हैं कि हमारे देशकी बहुत-सी लड़कियाँ पश्चिमी सभ्यताके प्रभावमें पड़ रही हैं। लड़कियोंको अपनी भारतीयतापर गर्व नहीं है। उन्हें सादा जीवन और उच्च विचार रखनेकी चेष्टा करनी चाहिए···

उनके ये सारे शब्द उन्हीं रङ्गचुने होठोंसे गिरते रहते हैं और मैं अवाक् उन्हें सुनती रहती हूँ!!

मुण्डे मुण्डे रुचिः

यह सही है कि यदि आप एक अदद मुण्ड रखते हैं तो आपकी अपनी रुचि होगी, आपकी अपनी कोई-न-कोई पसन्द होगी। हो सकता है कि आपको घरके आगे-पीछे बोटैनिकल गार्डेन लगानेका शौक़ हो (बग़ीचेमें चाहे आपके बैठनेकी जगह न हो पर फूलोंके पसरनेकी पूरी जगह फैली हुई हो!) शायद आप सिरमें चमेलीका तेल लगाते हों या आप घी लगाते हों, हो सकता है कि आपकी पसन्द कुछ ख़ास बेतुकी क़िस्मकी किताबोंको अकेलेमें बैठकर पढ़नेकी हो या हो सकता है कि आपकी पसन्दका सिर्फ़ लेखक एक मैं ही होऊँ!

इन पसन्द करनेवालोंकी कई कोटियाँ होती हैं। एक तो वे जो एक चीज़ पसन्द करते हैं पर कहते किसीसे नहीं। या कहा भी तो कहीं बहुत गुपचुप तरीक़ेसे कह दिया ताकि पसन्द की हुई चीज़को न पता चलने पाये—जैसे आपके अफ़सर या आपकी पत्नी। यदि आपको पता चल गया कि आपके अफ़सर या आपकी पत्नी आपको बेहद पसन्द करते हैं तो आपका दिमाग़ बिगड़ सकता है! इसीलिए वे अपनी पसन्दको छिपा-कर रखते हैं। दूसरे पसन्द करनेवाले वे होते हैं जो आपको अगर

पसन्द भी करते हैं तो ज़ाहिरा तौरपर मुँह खोलकर कह भी देते हैं— जैसे आपके मित्र। तीसरे पसन्द करनेवाले प्रचारक कहलाते हैं। आप उनकी पसन्दमें आ गये तो आपका नाम चिल्लाकर, आपपर लेख लिख-कर आपकी नाकमें दम कर देंगे और सारी दुनियासे कहते घूमेंगे कि पसन्द ऐसी होनी चाहिए जैसे कि उनकी है (कि उन्होंने आपको पसन्द किया है!)

ये तीसरी कोटिके पसन्द करनेवाले आलूकी तरकारीसे लेकर हर समय अध्यात्म बघारनेवालोंकी अनन्त संख्यामें बँटे रहते हैं। आप अपने चारों ओर निगाह दौड़ाइए। बहुत सम्भव है कि आस-पास ही ऐसे लोग आपको मिल जाँय जो सिर्फ़ आलूकी तरकारी ही पसन्द करते हैं। छप्पनों प्रकारका भोजन उनके सामने रख दीजिए, यदि उसमें आलूकी तरकारी नहीं है तो सारा खाना गोबर है। और यदि अध्यात्मवादी महोदयसे आपका पाला कभी पड़ गया होगा तो आपको शंकरसे अरविंद तक नाम उन्होंने रटा डाला होगा! आपपर ही क्या, सारी दुनियापर अपनी पसन्दको लादनेका ठेका उन महोदयोंने ले रक्खा है।

आलूकी तरकारीसे अध्यात्म तकके ग्राफ़बोर्डमें मेरे एक मित्रका नाम और उनकी अपनी स्पेशल रुचि ख़ास तौरसे मेरा ध्यान खींचती है। उनका नाम है बाबू मदनमोहन सदनसोहन! हो सकता है कि आपको ऐसा नाम सुनकर आश्चर्य न हो पर मुझे तो सरीहन हुआ था और बहुत जब्र करके भी जब मैं अपनी जिज्ञासाको नहीं दबा सका तो साहस करके मैंने उस नामका इतिहास भी पूछा था। बाबू मदनमोहन सदनसोहन के बाबा मध्यप्रदेशकी किसी रियासतमें राज कवि थे। उन्होंने बड़े प्रेमसे अपने पोतेका नाम ऐसा विचारकर रक्खा था जो तुक और छन्दकी दृष्टिसे सर्वथा उपयुक्त हो और साथ ही यह अर्थ दे कि वह मदन नाम कामदेवको मोहता हुआ सदन नाम गृहको सोहनेवाला अर्थात् उसकी

शोभा बढ़ानेवाला बने। तबसे बाबू मदनमोहन सदनसोहन अपने गृहकी शोभा बढ़ाते रहे। तुक, लय और छन्दका ऐसा प्रभाव उनपर पड़ा कि वह धीरे-धीरे उनका अपना अंग ही बन गया। बाबा अच्छे पण्डित और ज्योतिषी थे इसलिए उन्होंने बाबू मदनमोहन सदनसोहनकी कुण्डली स्वयं सुन्दर तुकदार सवैया छन्दोंकी गढ़ी थी। गोदमें जब भी ये खिलाये जाते तो हमेशा यगण-मगणकी मात्राओंकी ताल और लयपर। कभी लघु-लघु दीर्घका क्रम चलता, कभी लघु-दीर्घ लघु-दीर्घ और कभी निखालिस दीर्घ-दीर्घके क्रममें इन्हें गोदी खिलाई जाती। तुकबन्दियोंवाली लोरी सुने बिना उनकी आखोंमें नींद न आती। बड़े होकर खेलकूदमें वे लघु-लघु लघु-लघुकी कैरी करते या दीर्घ-दीर्घकी हिट लगाते। खेलकूदमें भी कभी उन्होंने मीटर नहीं छोड़ा। इस तरह छन्द तुक और लय उनके ख़ूनमें ऐसा बस गया कि वह अनजाने ही उनकी रुचि बन गयी। पहिले मुझे इसका पता न था पर अक्सर उनके व्यवहारसे यह बात मुझे खटकने लगी थी। जब भी वे कोई चीज़ लेनेके लिए निकलते थे तो हमेशा लम्बे रिद्धमिकल तुकदार और लयदार नामकी चीज़ें ख़रीदते थे। बिना तुक के वे बोलते ही नहीं—मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी उन्होंने दाँतका मञ्जन दूकानदारसे सीधे माँगा हो। जब भी कहा तब—'दाँत-वाँतका मञ्जन-सञ्जन कुछ है तो दे दो भाई।' उनकी यह पसन्दी सिर्फ़ चीज़ोंके ख़रीदने तक ही सीमित नहीं है। जीवनके सभी क्षेत्रोंमें वह अपनी यह पसन्द लागू करते हैं। उनका कहना है कि बातमें लय क़ायम रखना चाहिए और काम तुकसे करना चाहिए। और अब तो क्या दर्शन क्या मनोविज्ञान क्या अध्यात्म और क्या सिनेमा—सबको वह इसी कसौटीपर कसते हैं। संसारको वे एक विशाल सवैया छन्द मानते हैं। उसकी महत्ता, उसकी कसावट, मँजावट और गिना-चुना जीवन क्रम-नक्षत्रोंका तालपर घूम-घूमकर वापस आना—यह सब उन्हें अपने छन्द-वादी दर्शनके निकट ले जाता है—इसलिए वे दर्शनकी सभी पुस्तकें

छन्दोबद्ध देखना चाहते हैं। उन कवियोंकी रचनाओंमें जिनमें कविता कम, दर्शन ही अधिक छन्दोबद्ध किया गया है; उन्हें खासतौरसे पसन्द है। आदमीका दिमाग़ जिस घनचक्करी स्थितिमें एक विशेष तालपर घूम-घूमकर लौटता है, उनके कथनानुसार मनोविज्ञानका सबसे बड़ा और मूल कारण वही है। रीतिकालीन कवियोंको वे सबसे बड़े मनोवैज्ञानिकोंकी कोटिमें रखते हैं और आजकलके लोगोंको मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे उन्हें पढ़नेके लिए मजबूर करते हैं। बाबू मदनमोहन सदनसोहन इतना सब कुछ करते हैं पर वे कवि नहीं हैं। कवितासे उनका दूरका सम्बन्ध रह गया है—यह आप इसीसे समझ सकते हैं कि उन्हें पुलिस परेड देखने और बैंड सुननेमें बड़ा रस मिलता है। उसी परेडको वे मानव-जीवनकी गति समझते हैं और समझाते हैं। शहरके किसी हिस्सेमें पुलिस परेड हो रही हो, और उन्हें उसका पता चल जाय तो आपको बायें हाथसे पकड़ ले जाना और ले जाकर उसका माहात्म्य बतलाना, जीवनका सारा दर्शन, मनोविज्ञान, साइन्स, कला सब कुछ उसीके आस-पास बिनकर पूरा ताना-बाना तैयार कर देना और आपसे स्वीकृतिमें हुँकारी भरवाना—उनके लिए नितान्त बायें हाथका खेल है।

दूसरोंकी पसन्दके बारेमें मैं कैसी रुचि रखता हूँ, यदि यहाँ तक धैर्य रखकर आपने पढ़नेका साहस किया है तो आपको अब सोलहो आने अधिकार है कि स्वयं मेरी पसन्दको ललकारें। पर मेरी अपनी पसन्द तो कुछ रह नहीं गई है। उसके बारेमें क्या कहूँ वह तो—सच पूछिये तो रोज़-रोज़के इश्तहारों और विज्ञापनोंसे बनती है। आज मैंने अखबारमें देखा कि मेरे परिवारके लिए 'उजल साबुन' सबसे अच्छा है तो मैं मान गया कि मेरे परिवारके लिए 'उजल साबुन' ही सबसे अच्छा है। (और मानूँ भी कैसे नहीं? आखिर अखबारमें यह भी तो पढ़ा था कि जब सिकन्दर पोरससे मिला तो पोरसको उसने कुछ भी नहीं कहा सुना क्योंकि पोरस महाशयने सिकन्दरजीको वही भारतीय वस्तु भेंट की थी जो

कि 'उजल साबुन' में पड़ती है। तो जनाब जब 'सिकन्दरजी' मान गये तो मेरी क्या मजाल कि मैं न मानूँ।) दो एक महीना ही अभी बीता होगा कि सहसा फिर भान हुआ कि बहारे-गुलिस्ताँसे बढ़िया कोई साबुन नहीं होता क्योंकि इसे लगाते-लगाते ही कुमारी बिजली सिनेमा संसारकी सबसे बड़ी तारिका हो गई। (और फिर विश्वास कैसे न करूँ अभी कल ही जब पिक्चर देखने गया था तो स्वयं मिस बिजलीने रंगीन चेहरेसे मुसकुराकर कहा था कि मेरी कान्तिका रहस्य यही बहारे-गुलिस्ताँ साबुन है।) उस दिनसे बस बहारे-गुलिस्ताँ साबुन चलने लगा। किन्तु न बहार आई और न गुलिस्ताँ ही हाथ आया। पर साबुन था सो चलता रहा। घरके बच्चे धूल-कीचड़में सने हुए खेल-कूदकर लौटते थे तो अबतक बहारे-गुलिस्ताँ उन्हें भी साफ़ कर देता था। पर पिछले हफ्ते सिनेमामें फिर देखा कि अच्छी माँ वही है जो अपने बच्चेको खेल-कूदकर लौटनेपर 'मलमल-धो' नामक कीटाणुनाशक साबुनसे नहलाती है। मेरी पत्नी अच्छी माँ होनेका लोभ भला कैसे रोक सकती थीं। लिहाज़ा घरमें 'मलमल-धो' साबुन चल गया। जब अपनी कान्ति बढ़ानेके लिए उन्होंने ही चिन्ता न की और 'मलमल-धो' पर उतर पड़ीं तब भला मैं ही क्यों अपनी खूबसूरतीके लिए खामखवाह इस क़दर परेशान होऊँ। 'मलमल-धो' मेरी पसन्द भी आ गया, और मेरे मुँहपर भी रगड़ा खाने लग गया है। साबुन बनानेवाली कम्पनियोंने साबुनकी अनेक उपयोगिताओं तथा उनके ऐतिहासिक तथ्योंपर प्रकाश डाला है पर अभीतक उनमेंसे एक भी यह नहीं प्रमाणित कर सकी हैं कि जीवनको और अधिक संगीतमय तथा तुकदार बनानेके लिए भी एक विशेष प्रकारके साबुनकी आवश्यकता है। इस कामको यदि वे बाबू मदनमोहन सदनसोहनकी सहायता लेकर करें तो सहसा साबुनकी बिक्रीमें जो गतिरोध आ गया है वह एकबार फिर स्वच्छन्द गतिसे दौड़ने लगेगा।

इतनी देरतक साबुनके बारेमें महत्त्वपूर्ण बातें करनेपर अब आपको

यह सन्देह हो रहा होगा कि लेखके अन्तमें अवश्य ही किसी साबुनका विज्ञापन होगा। पर यक़ीन मानिए। मेरा ऐसा क़तई इरादा नहीं है। मेरे लेखके नीचे आस-पास या इस पूरी पुस्तकमें भी यदि किसी साबुनका विज्ञापन दीख पड़े और उसमें आप तुक या लय ढूँढ़ने लगें तो मेरा उससे कोई सम्बन्ध न मानिए।

हड़ताली बाबू

अपनी कुर्सीपरसे विद्यासागर बाबू फिर उठे। पासकी सीट वाले सहयोगी बाबूके कानमें कुछ खुसफुस बात की और आकर अपनी मेज़की फाइलोंको उलटने-पुलटने लगे। उनके मनमें बड़े-बड़े संकल्प और विकल्प उठ रहे थे। दफ्तरमें एक अजीब-सी सुगबुगी छाई हुई थी। बाबुओंके यूनियनने मालिकोंको हड़तालकी नोटिस दे दी थी। नोटिस पूरी होनेकी आखिरी तारीख़ आ गई थी। सबके मनमें एक ही बात थी—अगर शाम तक कुछ न हुआ तो···?

तो क्या हड़ताल होगी?

विद्यासागर बाबूको इस कम्पनीके दफ्तरमें काम करते-करते पन्द्रहवाँ साल था। दफ्तरमें वे बाबूगिरीके उस्ताद माने जाते थे। सालमें एक दिनकी भी छुट्टी न लेकर बराबर साढ़े नौ बजेसे शामके छः बजे तक काम करने और अपनी कम्पनी ही नहीं, दूसरियोंके भी कुल क़ानून ज़बानपर माँजकर रखनेकी आदत उनको बाबुओंके आचार्यकी कोटिमें ले गई थी! यूनियन और हड़ताल यह सब बातें उनके लिए बहुत नई थीं। पर दफ्तरके सभी नौजवान अब इन्हीं बातोंमें यक़ीन करते थे।

उनसे अलग होकर विद्यासागर बाबू अपना कोई दूसरा रास्ता बना सकें, इसका कोई उपाय उन्हें नहीं दिखाई पड़ता था। वे पान खाने, पानी पीनेके बहाने बार-बार उठकर दूसरे बाबूके पास जाते और धीरेसे पूछते—

'हड़ताल होगी न ? आखिर क्या हमारी बात न मानी जायगी तो हम दब जायँगे ?

नये यूनियनके जोशमें सबका मन उबाल खा रहा था !

'आप देखते जाइए विद्यासागर बाबू ! नाक न रगड़वा दें तो क्या रही ?'

विद्यासागर बाबू उबलते हुए जोशमें डुबकी मार कर थाह लेने की कोशिश करते थे और उसमेंसे अगर इस तरहकी एक सीपी भी हाथ लग गई तो वे मन ही मन निश्चिन्त हो उठते थे। कम्पनीके मालिकोंसे उनकी कोई सहानुभूति नहीं थी। पन्द्रह सालमें कम्पनीने उनके साथ क्या किया ! बाबू थे, बाबू हैं, बाबू ही रहेंगे। तनख्वाह भी नहीं बढ़ाती ! हड़ताल अगर होती है तो क्यों न हो !

पाँच बजनेमें अब कुछ ही वक्त बाकी था। मालिकोंने हड़ताली नोटिसपर कुछ समझौता नहीं किया। अपनी शर्तोंको ही मनवानेके चक्करमें रहे। हर खबर बिजलीकी तरहसे फैल रही थी। मैनेजरका चपरासी नोटिस-रजिस्टर लेकर आया। एकने उसे हाथमें लेकर ज़ोरसे पढ़ना शुरू किया—

'दफ्तरका कोई भी आदमी यदि किसी क़िस्मकी हड़ताल अथवा प्रदर्शनमें भाग लेगा तो उसके विरुद्ध समुचित कड़ी कार्रवाई की जायगी। कलसे अनिश्चित काल तक दफ्तरका कोई भी व्यक्ति यदि छुट्टी लेता है तो उसे हड़तालमें भाग लेनेवालोंके समानान्तर ही समझा जायगा। छुट्टी मात्र मेडिकल लीव मिल सकेगी—वह भी तब, जब कि कम्पनीका डाक्टर उसे देखकर अस्वस्थ घोषित कर देगा !'

दफ्तरके दूसरे बाबुओंने इस नोटिसपर दस्तखत करनेसे इनकार

कर दिया। चपरासी विद्यासागर बाबूके पास तक आ सके, इसके पहिले ही वे अपना झोला उठाकर बाहर चले गये। नोटिस दफ्तरके दरवाज़े और बोर्डपर लगा दी गई।

घड़ीकी सुइयाँ पाँचपर क्या पहुँचीं कि जैसे दफ्तरके उस विशाल बिलमें पानी पड़ गया और चीटियोंकी तरह तमाम बाबू निकल कर दफ्तरके बाहर नीमके पेड़के नीचे एकत्र होने लगे। अपने रिक्शेपर ही लाउडस्पीकर बाँधे हुए बाबू-यूनियनके नेता वहाँ आ पहुँचे। रिक्शा ही मंच बन गया। वे खड़े होकर भाषण देने लगे—

'आज हमारी आख़िरी तारीख़ थी। भाइयो! कम्पनीके मालिकोंने हमारी माँगोंपर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इसके माने है कि लड़ाईका न्यौता आ गया है! मैंने यह भी सुना है कि आप सबको नोटिस दी गई है कि हड़तालमें भाग लेनेपर आपके ख़िलाफ़ कार्रवाई की जायगी। आप अपने हक़के लिए कहें तो आपके ख़िलाफ़ कार्रवाई होगी! यह है हमारे यहाँका न्याय। मज़दूरोंके ख़िलाफ़ कोई नहीं बोलता क्योंकि उनकी यूनियन मज़बूत है। आपको सब धमकाते हैं क्योंकि उन्हें आपकी मज़बूतीका एतबार नहीं है। आप उसे मज़बूत बनायें! आपका बाल बाँका नहीं हो सकता। महँगाई दूनी होकर रहेगी—छुट्टियाँ पूरी मिलेंगी—तनख्वाह बढ़ेगी—पर उस सबके लिए आपको जानकी बाज़ी लगानी पड़ेगी! बिना इसके कुछ नहीं होगा!'

और इसके बाद नेताने 'इंकिलाब ज़िन्दाबाद' के 'इं'को नाभिसे खींचकर नारा लगवाना शुरू कर दिया। विद्यासागर बाबू भीड़में बहुत पीछे खड़े हुए थे। उन्होंने भी 'इंकिलाब ज़िन्दाबाद'का नारा लगाया। विद्यासागर बाबू जब अपनी जवानीके दिनोंमें कांग्रेसी नौजवानोंको 'इंकिलाब ज़िन्दाबाद'का नारा लगाते देखते थे तो उन्हें उस नारेके प्रति बड़ा विचित्र-सा आकर्षण होता था। अपनी चहेतीकी तरह उसे वे चाहते बहुत थे पर किसीके सामने उसका नाम खुलकर कह नहीं पाते

थे। घरके भीतर सारे दरवाज़े बन्द करके वे धीरेसे 'इंकिलाब ज़िन्दाबाद' कहते और उसके कहते ही उन्हें रोमांच हो आता था। दरवाज़ा खोलकर वे अपनी पत्नीसे पूछते—'कुछ सुना तो नहीं ?' जब वे नकार देतीं तो इनकी जानमें जान आती! आज़ादीके बाद यह नारा इतना सस्ता हो उठा कि विद्यासागरका उसके प्रति सारा मोह ही समाप्त होने लगा। इस बार जब मीटिंग समाप्त होनेके बाद उन्होंने 'इंकिलाब ज़िन्दाबाद'का नारा लगाया तो उन्हें वह नारा फिर वही रोमांच देने लगा।

'कलसे दफ़्तरमें कोई काम नहीं करेगा। दफ़्तरके सामने सब बाबू धरना देंगे।' सभा यह तै करके समाप्त हो गई। विद्यासागरपर 'इंकिलाब ज़िन्दाबाद' का जादू हो रहा था। वे सबका मन ले रहे थे—

'कलसे न आना···एकाके बिना कुछ काम नहीं होगा! कहा है कि संघे शक्ती कलजुगे! न आओ तो देखो कम्पनी कै दिन चलती है ?'

सब हुँकारी भर रहे थे। विद्यासागर बाबू सन्तोषकी साँस ले रहे थे। 'वही नहीं और दूसरे भी इस निश्चयपर डटे रहेंगे!'

वह घरकी ओर चलने लगे। पर सभाका 'मेस्मेराइज्ड ज़ोन'—उसकी लक्ष्मण-रेखा, बहुत दूर तक न थी। उनके मनमें फिर ऊहापोह मचा—

'कहीं ऐसा न हो कि मैं तो कल न आऊँ और ये बाक़ी ससुरे चुपचाप घुस जायँ दफ्तरमें! पर आऊँगा····यह देखने आऊँगा कि कौन जाते हैं और कौन नहीं ? न जाऊँगा आफ़िस तो यह मालिक साले हमें छोड़ेंगे ? मौक़ा मिलते ही बदला लेंगे। फिर कोई साला हमारे लिए नहीं खड़ा होगा! हमने एक दिनकी भी छुट्टी नहीं ली। बराबर जी तोड़ कर काम किया, यह उस वक़्त कोई थोड़े ही देखेगा!···छुट्टी महीनोंकी पड़ी हुई है। छुट्टी लेनेसे काम भी बन सकता था। साँप भी मरता और लाठी भी न टूटती! पर इन्हीं ससुरोंको यह नोटिस निकालनेकी क्या पड़ी थी ? रुपयेने अन्धा कर दिया है सालोंको। अकड़े जा रहे हैं। बाबुओंको

कुछ गिनते ही नहीं! अभी एक कलम घुमा दें लाखोंके वारे-न्यारे हो जायँ, तो यही साले दौड़-दौड़कर नाक रगड़ने आते हैं हमारे पास! मगर वैसे कहो तो न सुनेंगे!!'

चौराहा आ गया था। वे बायें हाथ मुड़ गये। मुड़ते ही उनकी विचार-धारा भी मुड़ी—

'पर कुछ भी हो मालिक हैं। मानेंगे थोड़े ही। हड़तालवालोंको बिना ऊँच-नीच किये इनको चैन नहीं पड़ सकती। छुट्टी रोककर सालोंने बड़ा बुरा किया। तीन महीनेकी छुट्टी उधर पड़ी है। करो साले तुम भी हड़ताल! तीन महीनेकी छुट्टी लेकर पड़े रहेंगे। जो कुछ होगा, हम भी उसमें मौज करेंगे! पर इस छुट्टीके कट जानेसे'''! डाक्टरी सार्टीफिकेटसे हो सकती है छुट्टी! पर कम्पनीका डाक्टर ठहरा। वह तो मालिकोंका पिट्ठू है हो। दवाई साला बाज़ारमें बेंचता है और हमको पानी पिलाता है। अबकी सालेका टी० ए० बिल आया तो नाकों चने चबवा दूँगा। पर हाँ एक्सीडेण्ट'''? एक्सीडेण्ट तो कभी भी हो सकता है! अगर मैं किसी गाड़ीसे ही दब जाऊँ तो क्या तब भी वह सार्टीफिकेट न देगा?'

सामने लकड़ी लदी हुई एक ट्रक घें-घें करती हुई निकल गई। विद्यासागर बाबू लपककर पटरी पर हो लिये!

'हत्तेरीकी! साले देखकर नहीं चलाते! अभी तो जान गई थी! अन्धे कहींके!!!' वह भुनभुनाये। सहसा उन्हें एक्सीडेण्टवाली बात याद आई—पर नहीं इस ट्रक सालीका क्या भरोसा! आपकी बीवीकी तरह आपका पाँव दबाकर थोड़े ही मान जायगी! धरके दबोच लेगी तो हड़ताल एक किनारे और यमलोक दूसरे किनारे! हाँ साइकिल या रिक्शा से लड़ जायँ तो चोट भी खा सकते हैं और जानका भी खतरा नहीं। मगर इस डाक्टरका क्या एतबार? कह सकता है कि चोट बहुत बड़ी नहीं है! दफतर भी जाओ और चोट भी खाओ! कहीं के न हुए!!'

विद्यासागरने दो पैसेकी मूँगफली खरीदी और सड़कके किनारे पड़ी एक बेंचपर बैठकर उसे खाने लगे। उन्हें अपनेपर खीभ आ रही थी कि वह छुट्टी बचाये रखनेके लिए कितनी बेवकूफ़ीसे काम कर गये थे। अगर चार दिन पहिलेसे ही छुट्टी मार देते तो इस हड़ताली झंझटसे बरी हो गये होते! पर तब तो उन्हें अपने छुट्टी-बैंकका मोह लग रहा था। वक़्पर भगवान् अक़ल न दे तो उसीको तो दुर्दिन कहते हैं। वे मैनेजरके बारेमें सोचने लगे कि क्यों न उससे मिलकर वे चुपकेसे अपनी छुट्टी मंज़ूर करवा लें। कभी छुट्टी नहीं ली है। एक बार छुट्टी माँगेंगे तो वह इन्कार न करेगा। पर वह तो चाहता ही है कि कुछ आदमी निकालकर अपने आदमी रख ले। मगर मिल लेनेमें क्या हर्ज है। सोचते हुए उठ खड़े हुए और उनके पाँव अपने आप ही मैनेजरके बँगलेकी तरफ़ मुड़ गये। दस गज़ रह गये होंगे तबतक एक परिचित आवाज़ने पुकारा—

'कहिए बाबूजी इधर कैसे आज?'

विद्यासागर बाबू पलट पड़े। उन्हींके दफ्तरका चपरासी था! वह घबड़ा उठे—

'अरे तुम बालकराम···मैं तो समझा कि कौन है जो मुझे पुकार रहा है। हैं हैं!! वह ऐसा था कि कुछ दवा लेनी थी···जानते हो न···दफ्तर में हमारे यहाँ तीन-चार आदमी···तुम कहाँसे आ रहे हो?'

बालकरामको विद्यासागर बाबूसे जवाबतलब करनेका कभी मौक़ा नहीं मिला था। इसलिए वह उनकी वाणीमें निहित घबड़ाहट न भाँप सका। बोला—

'यहीं साहबकी कोठीमें रहते हैं! पीछेकी तरफ़! पर आप इधर कहाँ डाक्टरकी दुकान खोजते चले आये। वह तो शहरकी तरफ़ मिलेगी!'

विद्यासागर और घबड़ा गये। यह बालकराम बाबुओंमें यह फैला देगा कि विद्यासागर मैनेजरसे मिलने गये थे। बातको पकड़ते हुए बोले—

'वह इधर एक होम्योपैथिक डाक्टर रहते थे न···पर खैर अब तुम

कहते हो तो शहर ही की तरफ़ जाकर दवा ले लूँगा। उधर ही ठीकसे मिलेगी''''ठीक है ठीक है '

वह मुड़ पड़े और फिर गुनगुनाये—

'सालोंने कोने-कोनेपर चौकीदार लगा दिये हैं। मैं कोई डरता हूँ ? मेरा जहाँ मन चाहेगा तहाँ जा सकता हूँ। मैनेजरके पास जानेमें क्या है ? आखिर कुछ''''

फिर उन्हें अपनी घबड़ाहटका ध्यान आया—

'हुँ हुँ साला मुझसे पूछता है इधर कैसे ? जैसे मेरा बाप है ? साला ज़िन्दगीभर चपरासी ही रहेगा ! कभी नहीं बढ़ सकता ! पर मैंने भी फ्लूकी बात निकाल दी !'

फ्लू की बात !!

आखिर भगवान्‌ने अक्ल दी न ! चाहे बालकरामके ही सहारे क्यों न दी ! फ्लू हो जाय तो सब झँझटोंसे छुट्टी ! पकड़ता भी है चुटकियोंमें ! चार दिन जुकाम-बुखार ! फिर दो हफ्ता रेस्ट ! पर सुनते हैं इस बारवाला फ्लू जान मार देता है ! जानका रिस्क लेना हो तो ट्रकका एक्सीडैण्ट''''! अरे नहीं ऐसा भी क्या''''सब अच्छे हो जाते हैं। फ्लूका ही मोहरा अच्छा रहेगा। साले दोनों पार्टीवाले चित्त हो जाँयगे।'

घर लौटनेसे पहिले वे तमाम उन परिचितोंके घर गये जिन्हें फ्लू हो रहा था। पास बैठे, उनके सिरपर हाथ फेरा और सहानुभूति प्रदर्शित करके अपनी सूझपर प्रसन्नमन घर चले आये। पत्नीसे कहा—

'सिर दर्द कर रहा है। बदनमें भी दर्द है चारपाई लगा दो ! शायद फ्लू-उलू हो ! कोई बात नहीं तबीयत चार दिनमें ठीक हो जायगी।'

कपड़े उतारकर प्रसन्न चित्त वे चारपाई पर लेट गये। पत्नीने थर्मामीटर लगाकर डाक्टर बुलानेका प्रस्ताव किया। पारा नार्मलसे २ प्वाइंट ऊपर जाकर ठप्प हो गया। देखकर विद्यासागर तपाकसे बोले—

'देखा ? नार्मलसे ऊपर हो गया है। अब चलो! पर अभीसे डाक्टरको बुलाकर तमाशा न करो। चढ़ जाय तब बुलाना।'

रातभर मियाँ बीबी बुखारका इन्तिज़ार करते रहे। थर्मामीटर लगता रहा। पर पारा अड़ियल टट्टूकी तरह आगे बढ़नेका नाम नहीं लेता था। विद्यासागर बाबू बोले—

'यह थर्मामीटर साला जापानी है। इसमें चढ़ेगा क्या? मुझे भीतरसे बुखार लगता है। तुम छूकर देखो!'

श्रीमतीने माथा छुवा। सब कुछ नार्मल था। पर वह बोलीं—

'हाँ कुछ गरम तो है।'

'कुछ गरम? अरे मेरा बदन अन्दरसे धुधकार रहा है।'

'डाक्टर बुलवाऊँ?'

डाक्टरका नाम सुनते ही उनका जोश ठंडा पड़ गया—

'डाक्टर साला क्या करेगा? वह तो बस ऊपरसे देखेगा। फिर कह देगा कि कुछ नहीं है। जब तक ऊपरसे न दिखाई पड़े, उसे बुलाना बेकार है।'

रात इन्तिज़ारमें बीत गई। न बुखार आया और न डाक्टर। घड़ी-की सूई खिसकते-खिसकते फिर सबेरेके दस बजानेको आतुर दीख पड़ने लगी। विद्यासागर दफ्तर जानेको तैयार होने लगे। श्रीमतीके विरोधको उन्होंने कुछ डाँटकर और कुछ समस्याका महत्त्व बताकर शान्त कर दिया।

दफ्तरके दरवाज़ेपर भीड़ जमा थी। सब बाबू आये थे। विद्या-सागर रिक्शेसे उतरे और घूम-घूमकर सबसे अपनी बीमारीकी भूमिका बाँधने लगे। उनके साथी कहने लगे 'तुम बेकार यहाँ तक आये। घरपर आराम करते!' पर विद्यासागर बोले—

'वाह! तुम सब यहाँ मरो और मैं आराम करूँ? यूनियनका काम तो सबके ऊपर है।'

दफ्तरमें किसी तरफ़से भी घुसनेका डौल न देखकर ही उन्होंने यह रुख अख्तियार कर लिया था। 'कोई और दफ्तरमें न चला जाय' मनके इस चोरको वे अपनी 'यूनियन स्पिरिट'से मिला देना चाहते थे। पर सबने उन्हें जबर्दस्ती रिक्शेपर बिठाकर घर वापस भेज दिया।

उनकी तबियत गड़बड़ थी। घर आकर थर्मामीटर लगाया। अबकी पारा ऊपर चढ़ा। एकसौ एक पर रुका। विद्यासागर बाबू बहुत प्रसन्न हुए। जैसे वे एक परीक्षामें पास हो गये हों। चटपट कम्पनीके डाक्टर को उन्होंने बुलवा भेजा। सोच रहे थे—

'चला करो अब हड़ताल! जितने दिन कहो, उतने दिनकी छुट्टी लूँगा। अभी तो बहुत छुट्टी ड्यू पड़ी है। इसी दिनके लिए तो रख छोड़ी थी छुट्टी!'

वे मुदित थे। कम्पनीका डाक्टर पाँच बजे शामको आया। देखा और दवा लिख दी। सार्टीफिकेट लिखता हुआ डाक्टर बोला—

'विद्यासागर बाबू! आपको पता है न?...आपकी यूनियन और मालिकोंमें आज शाम समझौता हो गया है। हड़ताल विथड्रा हो गई। कलसे आफ़िस होगा। आप भी अच्छा होकर अटेंड कीजिए। बेकार ही आपको इस टाइम फ्लू हो गया।'

हँसते हुए डाक्टर चले गये। विद्यासागरको काठ मार गया। फ्लूसे पहिली बार घबड़ाहट महसूस हुई। हड़ताल वापस होनेकी खबर सुनकर वे रुआँसे हो रहे थे। उनके सामने डाक्टरका मेडिकल सर्टीफिकेट रक्खा हुआ था जो उनकी आँखोंके रास्ते उनके लीव-रजिस्टरमें घुस गया था और उनकी ड्यू छुट्टीमेंसे दस दिन लाल रोशनाईसे काट रहा था।

तीन असम्बन्धित तस्वीरोंकी एक कहानी

बहुत दिनोंकी बात है कि मुंशी गंगासहाय नामके एक मुंशीजी कचहरीमें नौकरी करते थे। मुंशी गंगासहाय कचहरीको अपना मन्दिर समझते थे और पियर्सन नामक जंट साहबको अपना भगवान् मानकर पूजते थे। स्वामिभक्तिसे जिस प्रकार हनुमानजीने अपने भगवान्को प्रसन्न कर लिया था, ठीक उसी प्रकार पियर्सन नामी जंट साहब उनसे प्रसन्न था। मुंशी गंगासहायके दो पुत्ररत्न हुए। मिडिल तककी शिक्षाके पश्चात् मुंशीजीने दोनों पुत्ररत्नोंको आंग्ल शिक्षाके लिए स्कूलमें फिर दाखिल करवाया किन्तु उन पुत्ररत्नोंने शिक्षाके क्षेत्रमें छठीं और सातवीं कक्षासे आगे बढ़नेसे एकदम इन्कार कर दिया। इस प्रकार दोनोंकी दशा देख, जब उनके गुलकगलोंपर रेख ही फूट रही होगी कि मुंशी गंगासहायने दोनोंको ले जाकर अपने जंट साहबके चरणोंमें डाल दिया और बोले—

'हुजूर, यह रामसहाय और त्रिबेनीसहाय आपके दो बच्चे हैं। जो कुछ इनको लिखना-पढ़ना था वह तो ये लोग पूरा कर चुके हुजूर! अब

आप इनको भी अपनी खिदमत करनेका मौका दें तो हुजूर, मै भी अब अजुध्याजी जाकर भगवान्का भजन करूँ ।'

जंट पिर्यसन मुसकुराकर बोला—

'वेल वेल मोंशीजी । टोमरा कामसे हम बहोत ग्वुश हाय । आपका ये 'सन' आपका 'पोस्ट'पर काम करेगा । और ये दूसरा 'लड़का'का नायब साहब बोलना माँगटा है । टीक है ?'

मुशीजीने कृतज्ञतासे पहिले स्वयं जट साहबके पाँव पकड़े फिर अपने पुत्ररत्नोंसे चरण छुवाए । दस दिनके बाद त्रिबेनीसहाय नायब साहब हो गये और रामसहाय अपने बाप मुंशी गंगासहायकी जगहपर काम करने लगे ।

मुंशी गंगासहाय रिटायर हो गये । अयोध्या तो नहीं गये पर वहीं दोनों वक्त गंगा नहानेके लिए जाने लगे । पूजा-पाठमें घण्टेके बजाय दो घण्टे लगाने लगे और खाली वक्तमें कचहरीके साहबोंके पास जाकर सलाम करने लगे ।

× × ×

राजधानीकी एक संभ्रान्त बस्ती ।

शामका वक्त । बँगलोंसे हल्की नीली और पीली रोशनियाँ निकलने लगीं । ऐसे एक बँगलेमें एक मोटर घुसी । चपरास लगाये हुए पहिले एक चपरासी झपटकर नीचे उतरा और मोटरका दरवाज़ा खोलनेको लपका । मोटे खद्दरका दुग्ध धवल कुर्ता पैजामा पहिने बँगलेके स्वामी मोटरका हार्न सुनकर स्वागतको निकल आये । मोटरका दरवाज़ा खुलते ही खद्दरका बन्द कालर वाला कोट और पतलून पहिने एक व्यक्ति उतरा । बँगलेके स्वामीने हँसकर उसका स्वागत किया । दोनों हँसे । फिर भीतर चले गये ।

दो घण्टे बाद ।

वे दोनों फिर हँसते हुए बाहर निकले। मोटरपर चढ़ते हुए कोट-पतलून धारीने कहा····।

'ठीक है। यू डोण्ट वरी। मैं देख लूँगा। आइ एम देर।'

बँगलेका स्वामी उत्तरमें सिर्फ़ हँसा।

मोटर भर्र-भर्र करती हुई बाहर चली गई।

दस दिन बाद अख़बारोंमें विज्ञापन :

'नयी योजनाओंको जन-मानसमें अधिक स्पष्ट करनेके लिए 'लोक-सेवक' पदके लिए आवेदन-पत्र माँगे जाते हैं। आवेदकोंके लिए लोक-सेवाका निजी अनुभव तथा उस सम्बन्धका सम्पूर्ण ज्ञान होना अनिवार्य है। यूनिवर्सिटी अथवा कालेजकी किताबी शिक्षा इस पदके लिए आवश्यक न समझी जायगी। क्रियात्मक ज्ञान रखनेवाले उम्मीदवारोंको वरेण्य समझा जायगा। वेतन योग्यताके अनुसार। आयु तीस वर्ष। उम्मीदवारोंके ज्ञान एवं अनुभवको देखते हुए आयुकी सीमा घटाई-बढ़ाई जा सकती है। विज्ञापनके प्रकाशनकी तिथिसे दस दिनकी अवधिके भीतर सात रु: के पोस्टल आर्डरके साथ आवेदन-पत्र उक्त कार्यालयमें पहुँच जाने चाहिए।'

एकसौ पचास आवेदन-पत्र।

फिर तीस आदमियोंका इण्टर-व्यू।

फिर एक दिन शाम।

बँगलोंसे नीली-पीली रोशनियाँ निकलने लगीं। एक ऐसे ही बँगलेमें एक मोटर घुसी। दुग्ध-धवल खद्दरका कुर्ता पैजामा पहिने एक व्यक्ति उतरा और भीतर चला गया।

एक घण्टे बाद।

वह व्यक्ति बाहर निकल रहा था। उसे मोटर तक पहुँचानेके लिए बन्द कालरका कोट और पतलून पहिने दूसरा व्यक्ति भी बाहर आया। दोनों

धीरे-धीरे बातें करके हँसते रहे। फिर मोटरमें बैठते हुए आदमीने कहा····

'कब तक अप्वाइण्टमेण्ट लेटर इशू होगा ?'

'बस कल परसों तक हो जायगा। इट इज आल राइट।'

'अच्छा, अपनी फ़ाइल उधर भिजवा देना। मैंने कह दिया है।'

कोट-पतलून धारीने कृतज्ञताकी एक हँसी अपने होंटोंपर चिपका दी।

मोटर फिर भर्र-भर्र करती हुई बाहर चली गई।

दूसरे दिन दफ्तरमें एक नोट···

'लोक सेवक' पदके लिए एक सौ पचास आवेदन-पत्र आये थे जिसमें तीस अनुभवी व्यक्तियोंको बोर्डने इण्टर-व्यूके लिए बुलाया। इंटरव्यू-बोर्डने काफ़ी छान-बीनके पश्चात् श्री···को चुना है। विज्ञापनकी शर्तोंके अनुसार उन्हें कालिजी या किताबी ज्ञान न होकर लोकसेवाका अच्छा क्रियात्मक ज्ञान है। सिफ़ारिश की जाती है कि पदके महत्त्वको देखते हुए इसे कमीशन द्वारा 'गजटेड' घोषित करा दिया जाय।'

उसी दफ्तरमें, ऊपरसे चला एक दूसरा नोट····

'श्री कोट-पतलूनधारीने जिस अपूर्व योग्यता एवं लगनसे विभागका संचालन एवं उसकी व्यवस्था की है, उसे पूर्णतया कार्यान्वित करनेके लिए उन्हें कुछ अधिक कार्यकालकी आवश्यकता होगी। उनकी कार्य-क्षमता तथा विभागकी तात्कालिक आवश्यकताको देखते हुए उनका कार्यकाल तीन वर्षके लिए बढ़ा देनेकी घोषणा की जाती है। उनके रिटायर होनेकी जो तारीख पूर्व उद्घोषित थी वह इस आदेशके द्वारा रद्द की जाती है।'

× × ×

मेरी छत।

चारपाईपर लेटा हुआ मैं और पुरवइया हवाके झोंकोंके साथ आती हुई कुछ आवाज़ें।

शायद कहींपर एक आम सभा।

'चना जोर गरम', 'बालूकी भूनी मूँगफली है' 'लइया है करारी'के बीच लाउडस्पीकरसे उठती हुई एक और आवाज़····

'····तो फिर मैं यह कहा चाहता हूँ कि इस तरहकी बातें जो उठा करती थीं, डिप्टी और चपरासी जो बादशाहत करते थे वह ज़माना अब नहीं है। आप सोचें और समझें। ज़माना बदल रहा है। लोकतंत्र उठ रहा है। इसे बनानेके लिए देशको योग्य आदमियोंकी ज़रूरत है ××× (हवाके झोंके) खाली जगहको भरनेके लिए आप ऊपर उठिए। आज हम कोई काम उठाते हैं तो उसे करनेके लिए हमारे पास काबिल आदमी नहीं मिलते। लोग काम सीखना नहीं चाहते।×× (हवाके झोंके)××× मगर आप काम सीखकर नौकरीकी तरफ़ क्यों दौड़ते हैं ? आखिर नौकरी कितने आदमियोंको दी जा सकती है ? आपको तो अपने पाँवपर खड़े होनेकी आदत डालनी चाहिए। इसलिए····

और फिर सिर्फ़ 'चना जोर गरम' 'बालूकी भूनी मूँगफली है' की आवाजें हवाके साथ तेज होकर आने लगती हैं।

एक साहित्यिक डायरी

फरवरी २०, १९५७

प्रेम आन्दोलन

आज सुबह उठकर जब मैं अपने काम करनेकी मेज़पर पहुँचा, मेरे नौकरने किन्हीं सुश्री क० द० कु० का कार्ड लाकर सामने रख दिया। मैंने उन्हें भीतर बुलवा लिया। वे परदा हटाकर भीतर आईं। दुबली-पतली छरहरे बदनकी महिला—नमस्कार करनेके बाद बैठ गईं। शुरू किया···'मैंने आपकी अमुक रचना पढ़ी है, तमुक रचना चमुक पत्रिकामें देखी थी, घमुक कविता समुक संकलनसे देखकर अपनी सब सहेलियोंको सुनाई थी। आदि आदि। फिर आगे···आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। जैसा आप लिखते हैं वैसा ही आप दिखते भी हैं।' इतनी बातें सुनकर (खास तौरसे किसी पाठिकासे) हर लेखक 'महामगन' होता है। मैं भी हुआ। उन्होंने आगे कहा····'देखिए मैं आपसे एक मदद लेने आई हूँ।' मेरे हुँकारी भरनेपर वे बोलीं····'आप तो अपनी लेखनी से सदा अन्यायका विरोध करते हैं। 'हँसकर मैंने फिर उनके इस वाक्यसे सहमति जताई तो वे कहने लगीं···

'स्थानीय महिला समाज हिन्दी कवियोंके विरुद्ध एक आन्दोलन छेड़ना चाहता है। बहुत दिनोंसे हम लोग यह सोच रहे थे कि शायद उनमें सद्बुद्धि आ जाय या सरकार ही उन्हें सचेत करे। पर दोनोंके विवेकपरसे विश्वास उठ जानेके कारण हम स्वयं आन्दोलन छेड़ने जा रही हैं। बात यह है कि हमारी राष्ट्रीय सरकार राष्ट्रभाषाके कवियोंको यह हिदायत नहीं देती कि किस उमरके बादसे वे 'प्रेम-काव्य' लिखना बन्द कर दें। हम यह माँग करने जा रही हैं कि पैंतीस वर्षकी अवस्थाके बाद कोई भी कवि या कवियित्री प्रेम गीत लिखकर उसे सार्वजनिक स्थानोंमें गाता हुआ न पाया जाय। यदि इसका वे उल्लंघन करें तो उन्हें राष्ट्र निर्माण विरोधी मानकर तत्सम्बन्धी दफ़ाके अन्तर्गत दण्डित किया जाय। दमित इच्छाओं वाले इन बूढ़े-बूढ़ियोंका प्रेम-गीत आजके नवजवान जब गुनगुनाते हैं तो उनकी भी 'स्पिरिट' बूढ़ी हो जाती है और वे अपना प्रेम गलबल-गलबल व्यक्त करते हैं। आखिर आप बताइए, आपकी हिन्दीके तो इतने साहित्यकार संसद् और विधान सभाओंमें हैं। उन्होंने इस प्रश्नपर क्यों नहीं सोचा और कुछ क्यों नहीं किया? आप हमारा साथ देंगे या नहीं? आप ही बताइए कि प्रेम-व्रेम भी तो एक उमरके साथ ही शोभा देता है! जिन्दगी भर आप अशोककुमारकी तरह हीरो ही बने रहेंगे या कभी बाबा दादाका भी पार्ट करेंगे।'

मुझे अपने पुराने मौलवी साहबकी याद हो आई जो हर ग़ज़ल पढ़ानेके बाद एक लाइन रटवाते थे 'मुराद खुदावन्दतालासे है।' मैंने इन कवियोंके बारेमें यह कहानी कहकर उनकी कृतियोंसे 'मुराद खुदावन्द-ताला'की बात निकालनेको कहा। इसपर वे ज़ोरसे बोलीं''''

'अजी साहब! इतनी हया रह गई होती तो क्या बात थी? बहुत दिन अपने आपको 'मुराद खुदावन्दताला'के फेरमें रखकर बहलानेकी कोशिश की। पर अब तो खुल्लमखुल्ला ये लोग यही सब लिखते हैं।

इसे तो बन्द करवाना ही पड़ेगा। कण्ट्रीका 'मॉरेल' इससे डाउन होता है। अब आप बताइए हमारा साथ देंगे या नहीं ?'

उनके आन्दोलनके प्रति सहानुभूति प्रकट करके मैंने अपने मनमें अपनी उम्रका अन्दाज़ लगाया और उन्हें विदा किया। तबसे सोच रहा हूँ कि ये लोग क़ानून बननेके पहिले ही 'खुदावन्दताला'की शरणमें क्यों नहीं चले जाते ?

× × ×

अप्रैल ३१, १६५७

आलोचक : आगरा घरानाका हूँगा

अपने बारेमें कुछ लिखनेके लिए कई आलोचकोंको 'एप्रोच'कर चुका हूँ····कइयोंसे अपने ऊपर पुस्तककी आशा की, कुछसे अपने ऊपर लेखकी और कुछसे उनके लेखोंमें अपने महत्त्वपूर्ण उल्लेखके लिए कह चुका हूँ। पर सब लोग किनारा काट रहे हैं। कई दिनसे सोच रहा था कि आलोचक बन जाऊँ तो बड़ा अच्छा रहेगा। आज अपनी आलोचक बननेकी स्कीम आगराके एक महानुभावकी लिखी हुई आलोचना देखकर दिमाग़में तेज़ीसे घुमड़ने लगी। सङ्गीतकी ही तरह हिन्दी आलोचनामें भी आगरा घरानाकी कुछ देन बहुत संघातिक रही है। मर्मपर चोट करती है। उसे कितना बिसूरिए पर दर्द बना ही रहेगा। एक सम्यक् जीवन-दर्शन, सम्यक्-जन-साहित्य-बोध, सम्यक्-पिंगलज्ञान, सम्यक्-रसबोध, सम्यक्बही-मार्का आलोचना (अर्थात् पहिले पचास प्रतिशत प्रशंसा करके पचास प्रतिशत निन्दा कर देनेसे बैलेंस बराबर हो जायगा और आप निष्पक्ष आलोचक सिद्ध होंगे।), सम्यक-सौन्दर्य-ज्ञान-परख, और सम्यक्-टेक्स्ट-बुकी-दृष्टि—आगरा घरानाकी अपनी विशेषताएँ रही हैं। इस तर्ज़का आलोचक बनना सभी ख़तरोंसे मुक्त है और इस घरानेमें रहकर मैं डा० रामविलास शर्मा, डा० नगेन्द्र, डा० रांगेय राघव और विश्वम्भर मानव तथा राजेन्द्र यादवकी तरह कविता भी लिख सकता

हूँ। श्री प्रकाशचन्द्र गुप्तकी तरह उपन्यास भी लिख सकूँगा और मन चाहेगा तो बाबू गुलाब रायकी तरह हास्य भी लिख लूँगा। सम्पादकी करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार रहेगा। इस घरानेमें रहकर जिस विषयपर चाहूँगा रातोरात विशेषांक निकाल सकता हूँ। सुनते हैं कि इस घरानेके आचार्य अपने शिष्योंको वह गुर बता देते हैं कि किसी विषयको बिना छुए हुए किस प्रकार उसपर जमकर लिखा जा सकता है और नामोंकी हनुमानलूमी फेहरिस्त भी गिनाईं जा सकती है। हर तरहसे मेरे लिए सुविधाजनक है। और जिनको मैं 'ओबलाइज' करूँगा वह कभी न कभी तो मुझे ओबलाइज ही करेंगे। पर 'गण्डा' किस उस्तादसे बँधवाऊँ यही सोच रहा हूँ।

× × ×

दिसम्बर २३, १९५७

अज्ञेयोफ़ोबिया

कलसे कुछ तबीयत गड़बड़ है। सोचता हूँ कहीं मुझे भी 'अज्ञेयो-फ़ोबिया' तो नहीं हो गया। साहित्यके एक डाक्टरसे पूछा तो उन्होंने अज्ञेयोफ़ोबियाके निम्न लक्षण बताये :

(१) सारा बिश्व अज्ञेयमय दिखाई पड़ना।

(२) सड़कपर चलनेवाले हर व्यक्तिको अज्ञेयके चेलेके रूपमें संशकित निगाहोंसे देखना।

(३) हर पत्रिकामें छपे लेखके पीछे अज्ञेयका हाथ दीख पड़ना।

(४) हर मीटिंग और सम्मेलनमें अज्ञेयका रहना या न रहना एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना मानना।

(५) सोते-जागते हर समय अज्ञेयका नाम ले लेकर बर्राना आदि-आदि।

ये सब लक्षण अभीतक प्रकट नहीं हुए हैं इसलिए कुछ निश्चिन्त

हूँ। डाक्टर कहता है कि यह रोग बड़ा भयानक है और इसके शिकार रोगियोंको तरह-तरहसे यह व्याधि व्यापी हुई जैसे···

अ. उनको जो बेचारे यह आशा करते रहे कि अगले सप्तकके एक सुर वह भी बनेंगे····पर···हाय ! इनका रोग अभी प्रारम्भिक अवस्थामें है। शीघ्र ही उपचार न हुआ तो क्रानिक हो जायगा।

ब. उनको जिनकी पीठ अज्ञेयने थपथपाई थी लेकिन अब उन्हें वही थपथपाहट घूँसोंकी मानिन्द लग रही है। वे रोगमें बुरी तरह फँसे हैं।

द. उनको जिनके देखते-देखते एक फ़ौजी सिपाहीकी चर्चा साहित्यिक-के रूपमें होने लगी और वे जो 'चिर साधना' में लगे हुए थे उनकी पूँछ घटने लगी। इनकी व्याधि क्रानिक हो गई और उद्धार कठिन है।

स. उनको जो इस व्याधिसे इस कारण पीड़ित हैं कि किसी न किसी तरह पीड़ित रहना ही उनका 'पीड़ित वर्ग' कहलाना सार्थक करता है। ये लोग रोगको अपनी शोभा समझते हैं। यद्यपि इनके आकाओं-ने तो इस रोगको इतना आत्मसात् कर लिया है कि उसी 'फ़ोबिया'के साथ-साथ एशियाई सम्मेलन करते हैं और पत्रिकाओंका सम्पादन करते हैं।

डाक्टरोंका एक्सपर्ट कमीशन भी इस रोगसे छुट्टी दिलानेका कोई सार्थक उपाय नहीं सोच पाया है। अलग-अलग डाक्टरोंकी अलग-अलग राय है। कुछ कहते हैं :

अ. कि कवि नामके 'क' से भी सम्बन्धित सभी लोगोंकी काव्य-कृतियों का एक 'महाछनक' साहित्य अकादमीसे प्रकाशित होना चाहिए। उसके सम्पादक मण्डलका नाम अज्ञेय होना चाहिए—चाहे वे सीधेसे मानें चाहे जबरन। इससे 'अ' श्रेणीके रोगियोंको राहत मिलेगी।

ब. कि अज्ञेयसे पीठ थपथपानेका अधिकार छीन लेना चाहिए और यदि वह न मानें तो हर साहित्यकारको यह घोषित करना चाहिए कि उसके

पास पीठ नामक कोई चीज़ नहीं है। 'ब' श्रेणीके रोगी इस मान्यतासे बहुत सुखी हो सकते हैं।

द. कि कुछ 'सांस्कृतिक मिशन' घुमाये जाँय और उसमें 'द' श्रेणीके रोगियोंको जलवायु बदलनेके लिए बाहर भेज दिया जाय। हर क्रानिक मर्ज़ जलवायु बदलनेपर आराम पाता है। रोगीको भी यह तुष्टि मिलती है कि रोगसे उसका पिण्ड छूटा हुआ है।

स. कि इस श्रेणीका रोग जा नहीं सकता। हल्का हो सकता है वह भी तब जब कि आक़ा लोग छुटभइयोंका भी ध्यान रखें!

कुछ डाक्टरोंका कहना है कि आदमियोंका नहीं, वातावरणका इलाज करना चाहिए। रोगको पूरी तरहसे पहिचाननेके लिए यह ज़रूरी है कि रोगके अधिक स्पष्ट लक्षण होने चाहिए। रोग तो बराबर अपने चढ़ाव-पर ही कुछ न कुछ करता रहेगा ताकि साहित्यमें 'वर्ग संघर्ष'की थ्योरी बनी रहे!

सुना था कि होमियोपैथिकमें इसके प्रिवेंशनकी भी कोई दवा है। दवा लेनेके लिए जब जाता हूँ तो डाक्टर दवा खानेके आध घण्टा पहिले और आध घण्टा बाद अज्ञेयका नाम लेनेके लिए मना करते हैं। दाढ़ी रखने या न रखने, चश्मा लगाने, और नई कविता पढ़नेका निषेध बताते हैं।

नोट—पाठकोंके लिए एक किसीकी डायरी पढ़ना कोई अच्छी बात नहीं है पर आप जब पढ़ ही रहे हैं तो बता दूँ कि उक्त डायरीके तीनों नोट्स तीन दिनोंके लिखे हुए लगेंगे लेकिन वे 'हर छपनेवाली डायरी' की तरह एक ही दिनमें लिखे गये हैं और इसीलिए हो सकता है कि तारीखें कुछ गड़बड़ा गई हों।

दूसरी साहित्यिक डायरी

१२ जुलाई '५६

नई किताबका शीर्षक

काफ़ी दिन हुए अपने एक मित्रको खाली वक्तमें मैंने किताबें और लेख आदि लिखनेकी सलाह दी थी। उनका ज्ञान बहुमुखी था इसलिए मैं सोच रहा था कि वे अच्छा लिख लेंगे। आज शामको उन्होंने मुझे खाना खानेके लिए बुलाया था। उसी वक्त उन्होंने मुझे बताया कि मेरे आदेशपर उन्होंने एक किताब लिखी है। मैंने पूछा···उसमें क्या है?' उन्होंने कहा···'बहुत-सी बातें हैं। पहिले मैंने एक रामलोटन सिंहकी कहानी उठाई थी, मगर मूड कुछ भभा गया। कुछ लोगोंसे शिकवा-शिकायतें थीं, वह मैंने उसीमें लिख डालीं, तुम्हें याद होगा तम्बाकूपर मैंने एक निबन्ध लिखा था, खासा अच्छा था वह भी उसीमें जोड़ दिया। एण्ड यू नो शैली एण्ड बायरन आर माई फैवरिट पोयट्स; उनकी कुछ कविताएँ तो मुझे बेहद अच्छी लगती हैं; उन्हें भूल न जाऊँ इसी इरादेसे इस किताबमें उसे भी उतार दिया है! तुमको याद है न? यहाँकी म्यूनिसिपल्टीके बारे मैंने एक बार कुछ सुझाव लिखकर यहींके

अख़बारमें भेजा था। लोकल एडीटरने उसे काण्ट्रोवर्शल समझकर वापस कर दिया। पर मेरा अपना विचार है कि वे सुझाव सभी म्यूनिसपल बोर्डोंके लिए उपयोगी होंगे इसलिए इसी पुस्तकमें उसे भी संग्रहीत कर दिया है। बस आपको इस सबमें मेरा एक ही कमाल दिखाई पड़ेगा। वह जो शुरूमें रामलोटनकी कहानी चलाई थी न, उसका नाम मैंने बहुत सफ़ाईसे सबके साथ किसी न किसी जगहपर जोड़ दिया है। पब्लिशर कहता है कि आजकल नाविल ही चलता है। तो उसको मैंने एक तरहका नाविल ही कर दिया है। पर अब वह यह कहता है कि किसी विभागसे इस किताबका आर्डर ले आओ तब छापूँगा। वैसे मेरी किताब तो कई दृष्टियोंसे उपयोगी है पर अब तो सब विभाग नाम देखकर किताब खरीदते हैं। सुनते हैं कि वनस्पतियोंके आसपास नाम रख देनेसे खेती-बारी विभागमें किताबें आसानीसे खप जाती हैं। मुझे लोगोंने अपनी किताबका नाम 'लौकी-का-पौधा' या 'फल-फूल' रखनेका सुझाव दिया और इस तरहके नामोंके सबूतके लिए····'बैगनका पौधा, 'काले फूलका पौधा' 'बीज' पान-फूल' 'हरी घास' (पर तृण भर!) तमाम पुस्तकें भी दिखाईं। पर मुझे कुछ जमा नहीं। तुम क्या कहते हो? इसमें पकड़ भी तो हो सकती है। किताब भी जायगी और मैं भी। वैसे पंचायतोंमें भी काफ़ी स्कोप है। उसके लिए 'पंच' लगाने भरसे ही काम चल जाता है···पंच पुकार, पंच परमेश्वर, पंचेश्वर, प्रपंच, पंचप्रदीप, पंचशर, तमाम नाम चल रहे हैं और चल सकते हैं। पर और दूसरे लोग कहते हैं कि इसमें 'न्यूनेस' नहीं है। किताब बिक जायगी मगर नये और प्रतिभाशाली लेखकोंकी लिस्टमेंसे तुम्हारा नाम कट जायगा। आगे भी कभी वहाँ न आने पाओगे। अब कोई फड़कता हुआ पर ऐसा नाम बताओ जो किसी विभागके लायक़ हो। और साथ ही मेरा नाम नये और प्रतिभाशाली लेखकोंकी लिस्टमें भी लगवा दे। इसीलिए तुमको आज बुलाया है।'

नाम तो बहुतेरे सूझे पर ऐसा न सूझा जो किसी विभागको भी 'सूट'कर जाय। नामकी तो इतनी चिन्ता नहीं होती, पर अब लगता है कि जब तक उनको नाम न सुझा सकूँ तब तक उनका खाया हुआ नमक कैसे अदा करूँ ?

× × ×

१२ जुलाई '५७

अन्तर्राष्ट्रीय लेखक होते होते बचे

किसी भी देशके बुद्धजीवियोंको देशकी सक्रिय राजनीति एवं विचारों-में भाग न लेने देनेके लिए काफ़ी हाउसोंका रातो दिन खुला रखना बहुत आवश्यक है। मेरे एक बुज़ुर्ग लेखक-मित्रका कहना है कि काफ़ीके एक प्यालेमें इतना नशा होता है कि पीते ही पीनेवाला अपने आपको सर्वश्रेष्ठ (कुछ भी) घोषित करने लगता है। वह भी जब पी लेते हैं तो यही कहते हैं। काफ़ी हाउसमें अक्सर उन सब लोगोंसे मुलाक़ात हो जाती है जिनकी उम्मीद कहीं और नहीं रहती। बहुत दिनोंसे श्री····नहीं दिखाई पड़े। आज पूछा तो एक खासी अच्छी चीज़ सुननेमें आई। क़िस्सा यूँ है।

श्री···' ने अपने लेखक बन्धु श्री····को एक दिन सहसा यह बताया कि उनकी पुस्तक रूसी भाषामें अनूदित होकर छप गई है। श्री··· ··को इसका विश्वास नहीं हुआ तो श्री "·········" ने सबूतमें रूसी भाषामें छपी एक बढ़िया सजिल्द पुस्तक उन्हें दिखाई जिसपर सुनहरे अक्षरोंमें टाइटिल भी था "·········" ने बताया कि उनके रूसस्थित मित्रने उन्हें एक एडवांस कापी भेजी है। "राइटर्स कापी" और मार्केटमें बादमें आएगी। बहुत विश्वास और विस्तारके साथ सारी बातें कहने सुननेसे श्री·········को आख़िरकार यक़ीन पड़ गया। काफ़ी हाउसमें उस दिन खूब काफ़ी उड़ी—लोगोंने भरपेट माल खाया। श्री·······ने श्री·······से वह पुस्तक ले ली थी और रात भर उसे अन्दाजन पढ़ते रहे। सुबह-सुबह ही उठकर वे विश्वविद्यालयमें रूसी भाषा पढ़ानेवाले अध्यापकके घर

गये और उन्हें अपनी मूल तथा अनुवाद दोनों पुस्तकें देकर अनुरोध किया कि वे यह पढ़कर बतायें कि अनुवादमें मूलके प्रति न्याय हुआ है या नहीं। चिर गम्भीर मुद्रा रखनेवाले वे बंगाली अध्यापक महोदय उस दिन पहिली बार खिलखिलाकर हँसे और बोले''''औरे महाशाई। अपना के ई अनूबाद नेई हाय। जेई तो रूश शरकारका "न्यू एग्रीकल्चर मेथड" पर प्रचार पूश्तक हाय। श्री''''''''अत्यन्त क्रुद्ध होकर वहाँसे चले आये और घरसे डंडा लेकर श्री'''के घर गये पर वह घरपर नहीं थे। तबसे श्री''''''''अपनी साइकिलमें डंडा बाँधकर चलते हैं और श्री''''ने काफ़ी हाउस आना छोड़ दिया है।

इस कहानीसे कई शिक्षाएँ मैंने ली हैं। मसलन—

अ. काफ़ी हाउसमें कही गई किसी बातका विश्वास न करना चाहिए।

ब. विदेशमें अपनी किताब नहीं अनूदित होने देना चाहिए जब तक उस देशकी भाषा न सीख ले। नहीं तो एक दिन रोना निश्चित है।

द. किसीकी साइकिलमें डण्डा बँधा हुआ देखे तो समझ ले कि यह अन्तर्राष्ट्रीय लेखक होते-होते बच गया है।

× × ×

१२ जुलाई '५८

लेखक-पंचांग

अपने मित्र विनय सिंह मलहोत्राको मैं बड़े आदरकी निगाहसे देखता हूँ। सही मानेमें मेहनतकश आदमी हैं। हिन्दी लेखकके रूपसे उन्हें कोई नहीं जानता पर वे हर हिन्दी लेखकको जानते हैं और खुद लिख-लिखकरके ही वह अपनी रोज़ी चलाते हैं। पहिले वह कहीं क़ानूनगो थे। पर वहाँ किसी झंझटमें पड़कर उन्हें नौकरी छोड़ देनी पड़ी। तबसे वह बराबर हिन्दीमें लिख रहे हैं। आज शामको जब मैं उनके कमरेमें धड़धड़ाता हुआ चला गया तब मुझे उनकी सफलताका रहस्य पता चला। उन्होंने एक लेखक-पंचांग बनाया है। इस पंचांगमें वर्ष भर

के सारे तीज त्यौहारोंकी पूरी लिस्ट लिखी हुई है। उन त्यौहारोंके आगेके कालममें प्रस्तावित विषयोंकी सूची दी हुई है। मान लीजिए दशहरेका त्यौहार है तो उसके आगे लिखा हुआ है····विषय : मर्यादा पुरुषोतम रामकी जीवन झाँकी; राम और भरतका गंगा जमुनी चरित्र, लोक-गीतोंमें राम, तुलसी और वाल्मीकिके राम, लंका कहाँ थी : एक गवेषणा, अंगद की स्वामि-भक्ति, तुलसीदासका पंचवटी वर्णन, रामायणमें हास्य और व्यंग्य; पंचशील और रामायण आदि। सब गिनाना तो हमारे लिए सम्भव भी नहीं है। पर इसी तरह दीवालीके तमाम लेखोंके शीर्षकोंकी सूची, होलीके माहात्म्य और उससे सम्बन्धित अनेक लेखोंके शीर्षक [जिसमें वकीलों और जजोंके मज़ाक आदिपर भी एकाध लेखकी योजना रहती है।] रामनवमी, जन्माष्टमी, गोपाष्टमी, कजरी-तीज यहाँ तक कि एकादशीपर भी उनके कुछ प्रस्तावित विषय लिखे हुए हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने राष्ट्रीय पर्वोंकी भी लिस्ट उसीमें रख छोड़ी है। पन्द्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी, बापूका जन्मदिवस, नेहरू चाचाकी जन्म तिथि, और इसके साथ बहुतसे दूसरे नेताओंकी जन्म-तिथियाँ तथा महत्त्वपूर्ण दिनों की सूची भी उस पंचांगमें है। सबके सामने प्रस्तावित विषय लिखे हुए हैं। इस सबके अलावा मोटे तौरपर जाड़ा गरमी और बरसातके हिसाब से उन्होंने अपने पंचांगको विभाजित किया है। हर मौसममें मौसमी चीज़ें लिखनेके लिए। उनके उस पंचांगमें सब अखबारों-पत्रिकाओं और पत्रोंके पते नोट हैं और यत्र-तत्र वह तिथियाँ भी लिखी हैं जब उनके विशेषांक निकलते हैं। सभी अखबारोंमें वे एक ही नामसे नहीं लिखते। अलग-अलग विषयके लिए उन्होंने अलग-अलग 'पेन-नेम' रख छोड़े हैं। अन्तर्राष्ट्रीय विषयोंपर वे वि० सि० विद्यालंकारके नामसे लिखते हैं, लोकगीतोंपर रामखेलावन लाल जैसे किसी नामसे, हास्य व्यंग्यपर श्री चंचुकेशजीके नामसे, पौराणिक विषयोंपर टी० पी० बालननायरके नामसे, राजनीतिक विषयों और राष्ट्रीय पर्वोंपर जी० कोलिप्पा मेननके

नामसे, तथा जाड़ा गरमी बरसात वे इराट-विराट और किराट नामसे अक्सर लिखते रहते हैं। ये सब नाम देखकर मैं तो तुरन्त पहिचान लेता हूँ कि ये वही मलहोत्रा साहब हैं।

पंचांग बना लेनेके बाद वह बड़ी आसानीसे काम करते जाते हैं। मैंने उनको सलाह दी कि वह अपना यह पंचांग छपवा दें तो बहुतसे लेखकोंकी दशा सुधर जाय पर वह अपनी मेहनतको अकारथ नहीं करना चाहते। वह अब दुबारा क़ानूनगो भी होना पसन्द नहीं करते। कहते हैं....'यहीं मज़ेमें हूँ।'

ऊपरसे तो आज मैंने उनका बहुत मज़ाक उड़ाया पर एक दिन भरके लिए उनका पंचांग उधार लाना चाहता हूँ। सीधा रास्ता यही है।

कला-प्रेमीकी डायरीका एक पृष्ठ

आज शाम बड़ी गरमी थी। दिन भर इस क़दर तपन थी कि यह शाम भी एकदम सूख गई। कहीं बहुत दूर जानेका मन नहीं था। ढेरों कपड़े लादनेकी भी इच्छा नहीं थी। पास ही मेहता साहब रहते हैं। अच्छे कलाप्रेमी जीव हैं। अपने घरको भी उन्होंने खासी नुमाइश बना रक्खी है। उनकी हर वस्तुका रूप रंग उनकी अपनी देन है। 'कामन' बातसे अलग हटकर कुछ करना और रहना यह उनका अपना स्वभाव है। उनकी यह 'अनकामन' सुरुचि छोटी-छोटी बातोंमें भी दिखाई पड़ती है···मसलन यदि सब जगह पान चाँदीकी तश्तरीमें मिलता है तो मेहता साहब बाँसकी सूपनुमा तश्तरीमें पान खिलाते हैं। धातु और शीशेके गिलासोंके बजाय उन्होंने चन्दनकी लकड़ीकी छोटी-छोटी कमण्डल स्टाइल की लुटिया बनवा रक्खी हैं। पानी वे उसीमें पिलाते हैं। आजकी शाम उन्हींके पास काटनेकी सोचकर मैं उनके घर पहुँचा। 'सीलिंग फैन' चल रहा था पर उन्होंने मेरे हाथमें नारियल या खजूरके पत्तोंकी बनी एक छोटी-सी पंखी थमा दी। पंखीके पत्तोंपर सफ़ेदेसे कुछ खचीने खींचे हुए थे। उससे जितनी हवा निकल सकती थी वह मेरी गर्दन और

कालरके बीचमें चुहचुहाये हुए पसीनेके लिए अच्छा दिल-बहलाव थी। मेहता साहब बोले···

'बड़ी गरमी है साहब।····ये पंखी देखिए मैंने 'अंडमान-आइलैण्ड्स' से मँगाई है। आदिवासियोंका हैंडवर्क है।'

जो उचित था, मैंने वही किया····अर्थात् पहिले आदिवासियोंकी प्रशंसा की, फिर पंखीकी और फिर मेहता साहबकी।

वे अपनी कलाप्रियताकी प्रशंसा सुनकर सदा हँसते हैं। आज भी हँसते रहे। एक चाँदीके स्टैण्डमें लगी हुई जलभरी कमण्डली-लुटियाएँ आ गई थीं। हमने उससे पानी पी लिया। मेहता साहबने कहा···

'ये टम्बलर्स···'

मैंने कहा···

'जी हाँ। खूब हैं ये टम्बलर्स।'

'जी नहीं। इनमें सबसे बड़ी खूबी ये है कि इसमें पानी अपने आप ठंडा हो जाता है और इसके साथ ही स्वतः सुगंधित भी हो जाता है और फिर यह एण्टी-बायोटिक भी है।'

इतनी बात हो जानेपर मेरे लिए फिर यही उचित था कि मैं एक लुटिया जल उठाकर और पी जाऊँ। मैंने वही किया। पानी पीते-पीते मैंने आखिरी घूँट खींचनेके लिए सिर उठाया तो सामनेकी दीवारपर एक नये फ्रेमयुक्त चित्रपर निगाहें ठहर गईं।

लुटिया मुँहसे हटाते हुए मैंने सहसा पूछा···

'मेहता साहब ये चित्र···'

मेहता साहब फिर हँसे।

'जी हाँ···यह नया चित्र है तिकौड़ी चउधुरीका। आइए आपको नज़दीकसे दिखाऊँ।'

वे उठकर उस चित्रके पास गये। मैं भी उसके पास पहुँचा। चित्र सामने था। एक बहुत बड़े सफ़ेद काग़ज़पर दो समानान्तर लकीरें एक

छोरसे दूसरे छोर तक खिंची हुई थीं। बस! पूरा काग़ज़ चन्दनके बड़े फ्रेममें मढ़ा हुआ टँगा था। उसके नीचे बँगलामें लिखा हुआ था··· 'सीतेरे बिलापेर प्रतिच्छाया'। मैं चकराया हुआ खड़ा था। मेहता साहबने मुझे समझाते हुए कहा····

'यह प्रयोगशील शैलीमें पौराणिक चित्र है। सीता-हरणका चित्र है।'

अत्यन्त नौसिखिए कला विद्यार्थीकी भाँति मैंने जिज्ञासा की···

'पर इसमें सीता कहाँ है? रावण कहाँ है? यह भला है क्या?'

मेहता साहबने कहा···

'रावणके रथके पहियोंके ही तो निशान हैं। जिस रथपर वह सीता-को लेकर गया था उसीके ये पथचिह्न हैं।

मैं चुप था। वह कह रहे थे···

'यह सारी सफ़ेदी सीताके 'माइण्ड' की 'वेकेंट' हालतको 'डिपिक्ट' करती है जो आदमीको 'शॉक' मिलनेपर हो जाती है। और ये काले निशान रावणके तमोगुणको 'रिप्रेज़ेण्ट' करते हैं।' पूरे कमरेके अनुपात में जितने बड़े फ्रेममें उन्होंने वह चित्र लगा रक्खा था, और जितनी महँगी लकड़ीका वह फ्रेम था, उसे ध्यानमें रखते हुए मेरे लिए एक ही दरवाज़ा था—उस पौराणिक प्रयोगमें सम्पूर्ण आस्था।

हम दोनों कुर्सियोंपर आकर बैठ गये। मेहता साहब आधुनिक चित्र-कलामें प्रतीकोंके विषयमें अपने विचार प्रकट करते रहे, 'सीताहरण चित्र' पर होनेवाली कांट्रोवर्सी बताते रहे और मैं श्रीमती मेहताकी बनाई हुई हरे केलेके छिलकेके ऊपरी विटामिनी अंशकी पकौड़ियाँ खाता रहा। श्रीमती मेहता पाक-विज्ञानमें अपना सानी नहीं रखतीं। वे भी कभी मामूली चीज़ नहीं बनातीं।

हरे केलेके छिलकेके ऊपरी अंशकी पकौड़ियाँ खाकर जब मैं घरकी ओर वापस चला तो गरमी कुछ कम लग रही थी। पर मेरे दिमाग़में

वह प्रयोगशील चित्र घूमता रहा। घर आते-आते मैंने अपने कमरेमें टँगे दफ्तरके ग्रूप फोटोको निकाल फेंका और उसमें एक श्वेत-पत्र मढ़कर टाँग दिया। सुन्दर अक्षरोंमें उसके नीचे मैंने उसका शीर्षक लिखा और उसके नीचे एक परिसंवाद :

शीर्षक···हरी घास पर क्षण भर एक मिरगा।

परिसंवाद···

'यह क्या है?'

'यह हरी घासपर क्षण भर एक मिरगाका चित्र है।

'यह कैसे? इसमें हरी घास कहाँ है?'

'हरी घास मिरगा सब खा गया?'

'और मिरगा कहाँ है?'

'मिरगा खाकर चला गया। इसीलिए तो 'क्षण भर' कहा है।

'और कोई सवाल तो नहीं है?'

'नहीं।'

अपनी कलारुचिको मेहता साहबके आस-पास बिठानेके लिए मैंने अपने उन मित्रको धन्यवाद दिया जिन्होंने मुझे यह कथा बतायी थी।

अब मुझे हल्की-सी ऊँघ आ रही है। गरमी यूँ ही जान मार डाल रही है। अपने कलाप्रेमको यदि मैं सन्तुष्ट न कर पाता, तो शायद ही नींद आती। मेहता साहब रात भर मुझे परेशान करते।

हे नाथ, तुम कहाँ हो ?

पण्डितजीने एक लम्बी जमुहाई लेकर कहा—

"तो आपके नाटकमें जनाना पार्ट कौन कर रहा है ?"

"दो एक लड़कियोंसे बात की है। देखिए शायद उनके माँ-बाप अगर परमिशन दे देंगे तो वे लोग···"

"क्या बात करते हैं आप ? अजी महराज, कहीं औरतें भी स्टेजपर ड्रामा बोल सकती हैं ? वह घरमें ही नाटक कर सकती हैं। स्टेजपर ड्रामा करना मर्दोंका काम है। मर्दोंसे कहिए। वही ये पार्ट कर सकते हैं।"

"मगर ये मर्दोंकी जनानी सूरतें स्टेजपर बड़ी वाहियात लगती हैं।" मैंने कहना चाहा।

"अजी महराज सजानेकी तरकीब होती है। न जाने कितने नाटकोंमें मैंने जनाना पार्ट किया है। इसी सनातन-धर्म-सभा-हालमें द्रौपदी, सावित्री, सुभद्रा, मन्दोदरी और मेहरुन्निसाके जो ड्रामे मैंने बोले हैं, उसे आप शहरके किसी आदमीसे जाकर पूछिये। अहा ! क्या बात थी। दुर्गादास ड्रामामें मैंने राजपूतानीका पार्ट किया था। भरे जंगलके सीनमें दो छोटे-छोटे बच्चोंका हाथ पकड़े आध घण्टेतक मैंने अपने भागे हुए

पतिके लिए "हे नाथ, तुम कहाँ हो" का जो ड्रामा बोला था उसे देख करके यहाँका जो अंग्रेज़ कलक्टर था वह उठके खड़ा हो गया था।"

पण्डित जी अपनी यादमें खो रहे थे और मैं अपनी आँखोंको उनकी यादकी पूँछमें बाँधकर हँका रहा था। वे कह रहे थे—

"तो महराज वह नक्शा थे कि अब क्या कहूँ ? एक ड्रामा बोल दिया तो बस बोल दिया। आध-आध घण्टे तक अकेला स्टेजपर मैं बोलता रहा हूँ और पब्लिक सन्नाटा खींचे सुनती थी। अब तो आध घण्टे क्या, कोई साला एक मिनट भी स्टेजपर अकेला नहीं बोलता। तब बताइये महराज उसमें एक्टिंग क्या हो ? अब आजकल तो स्टेजपर कुर्सी, मेज़, झाड़-फानूस सब लाकर लगा दिया और आपके क्या कहने हैं वो हीरो महराज उछलके उस कुर्सीके पास गये वहाँसे उस मेज़के पास गये और फिर उछलेके आगे आये और फिर उछलके मेज़के पास गये। तो उछलकूद तो इतनी और जो कहो ड्रामा तो ड्रामा एक लफ्ज भी न बोले और पर्देमें भुक्कसे घुस गये। तो यह सब तो तमाशा है। अरे महराज ड्रामा तो वह है कि अपनी ज़ुबानसे पब्लिकको रुला दे और पब्लिकको हँसा दे। नहीं तो बस वही माजरा देखिए कि उछलके इस कुर्सीसे उस मेज़ और उस मेज़से उस झाड़-फानूस और····

"नहीं नहीं पण्डितजी, देखिए। वह तो ज़मानेकी माँग है। ज़रा-सा स्टेजपर आजकी सचाईको और उभारनेके लिए यह सब मेज़-कुर्सी लगाते हैं। यह तो सजावट है नाटककी।

पण्डितजी चटाकसे बोले····

"सजावट ! अजी महराज सजावट ये लौंडे क्या करेंगे ? सजावट तो हम लोगोंके ज़मानेमें कम्पनियाँ करती थीं। आपने पुराने परदे देखे होंगे। अहा ! क्या बात थी। जंगलका सीन है तो बस नदी-नाले-पहाड़ सब उसी जंगली पर्देमें। बाजारका सीन देखिये तो भगवान् क़सम तबीयत भक्क हो जाती थी। राजा-रानीके महल जैसे पर्देमें बने देखे वैसे तो

आपने कहीं सचमुचके भी न देखे होंगे। तो वह थी सजावट। अब ये आगे-पीछे काला परदा डालकर सजावट होती है? मालूम होता है कि आगे-पीछे मातम ही मातम है। और सच्चाई तो आप क्या कहते हैं? यही ईश्वरभक्तीमें पूरा सुदर्शन चक्र स्टेज पर चलवा दिया था। बिजली नहीं थी। तब "बाटरी" का खेल था। स्टेज फाड़कर तब भगवान् विष्णु प्रगट होते थे। पब्लिककी घिग्घी बँध जाती थी। तो वह थी सजावट और वह थी उसकी सिफ़त। अरे महराज! मेज़-कुर्सी तो आप अपने घरमें भी देखते हो। उसीको देखनेके लिए आप काहे अपनी रातभर जागरन करो?"

पण्डितजी ने अपनी भाषामें यह अन्तिम पुट देकर जिस आत्मीयतासे अपनी बात कही थी, उससे कनविंस हो जाना बहुत असम्भव नहीं था। मगर मैं मुहल्लेकी नाटक समितिका संयोजक बनाया गया था। नाटकके लिए मुझे जितना कुछ करना चाहिए था उसको ध्यानमें रखते हुए मैंने सबसे पहिले चन्दा बटोरा, फिर 'कास्ट' बटोरा, फिर तखत बटोरनेकी योजना बनाई, पोशाकें बटोरनेका जिम्मा किसी और पर सौंपा और तब अपने मुहल्लेमें ही रहने वाले पण्डित रामरतन महराजके पास पहुँचा था। पण्डितजी पोस्ट आफ़िसमें काम करते थे और इस शहरकी सनातन-धर्म-सभाके पुराने एक्टर थे। दशहराके दिनोंमें सभाके नाटक दस-दस दिन तक होते थे और लोग रात-रातभर जागकर उसे देखते थे। पर धीरे-धीरे वह सभा अपने आप टूट गई। पुराने लोग इधर-उधर हो गये, नये लोग उसमें घुसे नहीं तो नाटक-मण्डली चल बसी। पण्डित जी चूँकि इसी मुहल्लेमें रहते थे इसलिए जब हम लोगोंने नाटक खेलनेकी योजना बनाई तो सोचा कि उसका उद्घाटन पण्डितजीसे ही करवाया जाय। पण्डितजी तबसे मेरी कैफ़ियत तलब कर रहे थे। वह हर तरहसे आधुनिक नाटकको वाहियात साबित करनेपर तुले हुए थे। अबकी बार मैंने चोट की....

'पण्डितजी ! वह नाटक तो यूँ ही तमाशे थे। उसमें वह सफ़ाई और परफेक्शन तो थी नहीं। स्टेजपर अगर राणा प्रताप और शक्तिसिंह बाटाके पुराने जूते पहिनकर चले आये और तलवार माँजने लगे तब भी कोई कुछ नहीं कहता था। पर आज कोई करे तो...'

पण्डितजी ज़रा-सा रुके मगर फिर बोले—

'अजी महाराज, आजकी पब्लिक ही ऐसी है कि उसकी निगाह जूतेपर जाती है। वरना पहिले जूते-बूते क्या बस ड्रामापर निगाहें रहतीं थीं। कौन कितना अच्छा ड्रामा बोलता है ? राणा प्रतापकी बात आप कहते हो....हमारे यहाँ राणा प्रताप बनते थे यही अपने कन्धैयालाल बुक्सेलरके बाप। ऐसा कड़कदार ड्रामा बोलते थे कि सुननेवाले भी थर्रा जाते थे। जैसा कड़कदार ड्रामा बोलते थे वैसा ही जानदार गाना भी गाते थे। जंगलमें राणा प्रतापका वह गाना—

'आरामके थे साथी क्या क्या
जब वक़्त पड़ा तब कोई नहीं।...'

कन्धैयालाल बुक्सेलरके मनेजरसे पूछिएगा कि कैसा वह गाते थे। हारमुनियम मास्टर तो यही मनेजर थे न। पैरवाला हारमुनियम दोनों हाथसे बजाते थे। बस आगे बढ़कर ज़रा-सा राणा प्रतापने बता दिया कि 'मास्टर यही न ना न ना ना ना ना ना'....और मास्टर बजाने लगते थे। वैसा हारमुनियमका भी हाथ किसीका नहीं देखा। ज़रा-सा सुरसे पूरा गाना बजा देते थे। अब आजकल तो नाटक क्या होता है पूरा मर्सिया होता है। दरबारके गाने-बजानेके सीनकी कौन कहे शुरूमें प्रार्थना तक तो गवाते नहीं। नहीं तो अपने उसी राजपूतानीवाले जनाने पार्टमें मैं 'हे नाथ, तुम कहाँ हो ?' कहकर ऐसे बिलख-बिलखकर शैर पढ़ता था कि औरतें बेहोश हो जाती थीं और मर्द अकबर बादशाहको गाली देने लगते थे। शैर-ओ-शायरी चीज़ ही ऐसी होती है। बिना उसके क्या ड्रामा ? आपके नाटकमें कोई गाना है ?'

मैं आखें बन्द किये हुए राणा प्रतापको कड़कदार आवाज़में ना नाना नाऽ करके मास्टरको 'ट्यून' बताकर गाते हुए सुन रहा था। पण्डितजीके सवालको सुनकर चौंक पड़ा।

'जी नहीं। गाना-वाना तो फिर कभी होगा अलगसे।'

'तब बताइए आपके ड्रामेमें मैं क्या देखने चलूँ? अच्छा बीच-बीचमें कौन 'कॉमिक' चलेगा?'

'कॉमिक इस बार नहीं अगली बार करेंगे पण्डितजी। बात ये है कि कुल आधे घण्टेका तो नाटक है उसमें कहाँसे कॉमिक होगा?

'तो आधी घण्टेमें आप क्या ड्रामा करेंगे? अरे आधी-आधी घण्टा तो एक आदमी ड्रामा बोलता है महराज। ये आपका कैसा नाटक है?'

'बस छोटा-सा ही नाटक है पण्डितजी। आप किसी तरह आकर अपना आशीर्वाद दे दीजिए। आध घण्टेकी ही तो बात है। क्या होता है अपने आप ही देख लीजिएगा।

आध घण्टेकी ही बात है 'यही सोचकर शायद उन्होंने हुँकारी भर दी। और मैं सोच रहा था अबकी वैसा नाटक किया जाय कि पण्डितजीको फिर ज़ोरसे कहना पड़ जाय'''हे नाथ, तुम कहाँ हो?'

मृत्युका नया आयाम

आँखोंमें लगे काजलकी बारीक लकीरको बहुत सफ़ाईसे बचाकर आँसू पोंछती हुई मिसेज़ शर्माने कहा···

"कुछ भी कहो बहिन जी! हमें तो इत्ते साल हो गये यहाँपर। आज तक किसीकी अरथीके साथ हमने इत्ती भीड़ जाते नहीं देखी। कित्ता आदमी था। शहरके किसी कोनेका शायद ही कोई बचा हो जो इस अरथीके साथ न आया हो। गुप्ताजीका कित्ता नाम है। आखिर उनसे हमदर्दी करनेको कौन न आता?"

मिसेज़ गुप्ताने भी अपने रूमालसे आँखोंपर हल्की थपकी देते हुए कहा···

'गुप्ताजी अपनी माँको बहुत चाहते थे। जबसे वह बीमार पड़ीं तबसे इनके मुँहमें क्या दाना क्या पानी, कुछ भी नहीं गया। न जाने कितनी बार मैंने कहा होगा कि आप तो कुछ खा-पी लीजिए। ऐसे सेवा भला कै दिन होगी? पर जो उन्होंने मेरी कभी सुनी हो? आधे होके रह गये बहिनजी। आपने तो देखा ही होगा?'

'अरे तो गुप्ताजी भी क्या करते? माँके दूधका 'रिन' बहुत बड़ा होता

है बहिनजी। और माताजी भी तो कित्ती अच्छी थीं। आपके घरका सारा काम-काज तो उन्होंने अपने ही सिरपर उठा रक्खा था। घर तो सूना हो ही गया। आपकी मुसीबत भी अब और बढ़ गई होगी।' मिसेज़ शर्माने रूँधे गलेसे कहा।

मिसेज़ गुप्ताने भरभराये हुए गलेसे हल्का-सा प्रतिवाद किया'''

'सूना तो बहिनजी। घरका पाला सुआ उड़ जाय तो भी सूना लगने लगता है। आदमी तो ख़ैर आदमी ही है। पर मैं उनको कुछ काम-धाम नहीं करने देती थी। बुड्ढी तो हो ही चली थीं। काम-वाम कुछ उनसे हो भी नहीं पाता था। और फिर गुप्ताजी भी नहीं चाहते थे कि उनकी माँ काम करें।'

'अरे हाँऽऽ वह तो बूढ़े आदमियोंकी उमरका ध्यान तो बहिनजी रखना ही पड़ता है। फिर गुप्ताजी तो अपनी माँको कित्ता चाहते थे।''' हाँ सुनिएऽ। मिसेज़ शुँगलूके घरसे कोई नहीं आया था क्या? ख़बर तो उनको हो गई थी न?' मिसेज़ शर्माने गलेको कुछ साफ़ करते हुए मुहल्लेकी राजनीतिकी तरफ़ मिसेज़ गुप्ताका ध्यान खींचना चाहा। मिसेज़ गुप्ता और मिसेज़ शुँगलूकी हर बातमें लाग-डाँट रहती थी।

मिसेज़ गुप्ताने बात टालते हुए कहा—

'ख़बरकी तो क्या कहती हैं बहिनजी! ख़बर तो मिनट भरसे बिजलीकी तरहसे सारे शहरमें दौड़ गई थी। इतने आदमी आये कि सारा ड्राइंग रूम हर वक्त भरा रहता था। मुझे तो पहिली बार पता चला कि गुप्ताजी को शहरमें लोग कितना मानते हैं। अब ख़ैर, उसमें कौन-कौन आया था'''' यह मुझे कहाँ तक याद रह सकता है?

फिर भी मिसेज़ शर्माकी जिज्ञासा शान्त न हुई। उन्होंने और दो-चार नाम गिनाये। पर मिसेज़ गुप्ताने क़बूल करके न दिया। अन्ततः मिसेज़ शर्मा इस तरह सहानुभूति प्रकट करके चली गईं।

मिस्टर गुप्ता घर वापस तशरीफ़ लाये। आते-ही-आते उन्होंने ज़ोरसे पूछा—

'कौन-कौन आया था ?'

नौकरने एकाध विज़िटिंग कार्ड दो-एक खत और एक तार गुप्ताजीके सामने लाकर रख दिया। वे उन्हें पढ़ने लगे। मिसेज़ गुप्ता तब तक आकर बोलीं···

'आज तो मिसेज़ शर्मा भी आई थीं।'

गुप्ताजी बोले····

'अच्छा ? तुम तो कहती थीं कि वह हरगिज़ न आयँगी। उनका नाम रजिस्टरमें नोट कर लो। और ये लो। ये तीन-चार लोगोंने 'कारण्डोलेंस'के मेसेज़ भेजे हैं। इनके नाम भी रजिस्टरमें चढ़ाकर रख दो।'

'अरे ये मिसेज़ शर्मा तो अपनी नायलनकी साड़ी दिखाने आई थीं। बिलकुल मामूलीवाली नायलन थी पर उसका पल्लू और क्रीज वे इस तरह-से ठीक कर रही थीं जैसे अपने हिसाब 'फारैन' नायलन हो। मनमें तो आया कह दूँ कि बहनजी इस तरहके चीप नायलनकी क्रीज इसी तरह रहती है, इसे सीधा करनेसे कुछ नहीं होगा। पर मैंने सोचा बुरा मान जायँगी कि मैं तो इनके घरमें इनकी सासके मरनेपर दुःख करने आई और ये उल्टी-सीधी सुनाने लगीं। मिसेज़ शर्माको साड़ी और ब्लाउज़के मैचिंग कलर तक तो मालूम नहीं और आई थीं मुझपर शान गाँठने।··· अरे हाँ जो सुनो। ये मिसेज़ शुँगलू और मिस्टर शुँगलू अपने आपको बहुत लगाते हैं। ज़रा-सा हमारे दरवाज़ेपर नहीं आकर खड़े हुए ?'

'गुप्ताजी अखबार पलटते हुए बोले'···

'वह तो साले हमसे जलते हैं। पर हमारे यहाँ तो कल सी० एम० तक आये थे। बात यह है कि अभी तो बहुतसे आदमियोंको इस न्यूज़का पता ही नहीं है।···आज मैं ख़ुद अखबारमें न्यूज़ लिखकर दे आया

हूँ। कल-परसोंसे देखना ताँता लगा रहेगा।···सुनो ऐसा करो अम्माँ की कोई फ़ोटो निकालकर ड्राइंग रूममें टँगवा दो। कल सुबह शायद हमारे आफ़िससे कुछ लोग आयँगे। चलो ज़रा ड्राइंग रूम ठीक कर दो।'

दोनों उठकर ड्राइंग रूम ठीक करने चले गये।

उसी समय अपने घरमें मिसेज़ शर्मा मिस्टर शर्मासे कह रही थीं···

'बनी-ठनी बैठी थीं मिसेज़ गुप्ता। लगता थोड़े ही था कि इनके घरमें कोई मर गया है। अरे वह तो अच्छा ही हुआ कि वह बुढ़िया जल्दी ही चली गई। उसे तो ये लोग सिर्फ़ एक वक्त खाना देते थे और बेचारी अपने ही घरमें कोई चीज़ छूने भी नहीं पाती थी! भगवान् से किसीका दुःख बहुत दिन नहीं देखा जाता!'

और मिस्टर शर्मा अपनी माताजीकी याद कर रहे थे जो मिसेज़ शर्मा-से लड़-झगड़कर दस दिन हुए हरद्वार चली गई थीं!!

श्री केशवचन्द्र वर्मा :

एक आत्मश्लाघावादी दृष्टिकोण

स्थापना : भारतीय साहित्यमें हास्यव्यंग्यपरक रचनाओंकी दृष्टिसे श्री केशवचन्द्र वर्मा ही सबसे महान् लेखक हैं। ऐसा चिंतक, विचारक और निर्भीक साहित्यकार न पहिले कभी हुआ है और न आगे हो सकता है।

इस स्थापनापर दो आपत्तियाँ हो सकती हैं—

- यह दावा एकदम निरर्थक और ग़लत है। इससे भ्रम होगा।
- मैं स्वयं अपने ही बारेमें ऐसा लिखनेका निर्लज्ज व्यवहार क्यों कर रहा हूँ ?

इन आपत्तियोंके दो उत्तर हो सकते हैं :—

- यदि मेरा दावा ग़लत और निरर्थक भी है तो उसपर इतना हल्ला-गुल्ला मचाने और पास-पड़ोसके लोगोंको मेरा नाम ले-लेकर गालियाँ

सुनानेसे आपको क्या मिलेगा सिवाय इसके कि आपके पड़ोसवाले भी मेरा नाम जान जायँगे। और फिर दुनियामें इतनी सारी चीज़ें ग़लत और भ्रामक हो रही हैं। उनके पीछे आप डंडा लेकर क्यों नहीं पड़ते (यदि आप मेरे ही पीछे पड़ना चाहते हैं तो…।)

● मैं स्वयं ऐसा (निर्लज्ज व्यवहार ?) क्यों कर रहा हूँ—हाँ, इसका उत्तर मैं आपको ज़रूर दूँगा।

मैं भारतीय संस्कृतिका हामी हूँ और भारतीय संस्कृतिमें आत्मश्लाघा वरेण्य मानी गई है—स्वयं भगवान् वेदव्यास, पण्डितराज जगन्नाथ, जयदेवसे लेकर गिरिजाकुमार माथुर तकने आत्मश्लाघाको श्लाघ्य मान-कर अपनी कथा स्वयं कही है। सभी वाद इसपर सहमत हैं कि अपनी-अपनी आत्मश्लाघा करनेका सबको पूर्ण अधिकार है। वैसे यवनोंपर भी भारतीय संस्कृतिका अच्छा प्रभाव पड़ा। उन्होंने भी अनेक बार अनेक तरहसे आत्मश्लाघामें अपनी आस्था दुहराई है, यथा :

रेख़्ताके तुम्हीं उस्ताद नहीं हो ग़ालिब
(कहते हैं अगले ज़मानेमें कोई मीर भी था।)

बादलोंसे अपने उठते हुए मज़मूनोंके आगे अरस्तूको भी चूँ करनेका प्रजातांत्रिक अधिकार उन्होंने नहीं दिया।

भारतीय संस्कृतिके विशुद्ध प्रचारक मुंशी प्रेमचन्द भी आत्मश्लाघा-का महत्त्व जानते थे। उन्होंने तो स्वयं आत्मकथांक निकालने तककी बात सोची थी पर उस घोषणाके साथ ही दो विद्वानोंमें मतभेद हुआ जिनके नाम निम्नांकित हैं :

● मुंशी प्रेमचन्द
● पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी।

इस संबंधमें मुंशी प्रेमचन्दका कहना था कि जीवनमें तो मेहतरसे भी सीखा जा सकता है—(अर्थात्-तब मुझसे क्यों नहीं ?)

श्री वाजपेयीसे उनकी आत्मश्लाघा देखी न गई। तथापि भारतीय

संस्कृतिसे प्रेम होने एवं उसपर पूरी आस्था रखनेके कारण मुंशी प्रेमचन्द इससे क़तई न डरे और न झिचके। अस्तु!

व्याकरणकी दृष्टिसे आत्मश्लाघा पाँच प्रकारसे की जा सकती है :—

● प्रथम प्रकारकी 'शून्य-पुरुष'के अन्तर्गत आती है। इस कोटिमें वे सभी आत्मश्लाघाएँ समान रूपसे स्थान पा सकती हैं जिनमें स्वयं लेखक आत्मश्लाघाको सार्वजनिक रूपसे स्वीकार नहीं करता पर परोक्ष रूपसे उसे वही चलाता है—जैसे प्रकाशकोंकी ओरसे दिया गया पुस्तकोंका (कहनेको व्यापारिक किंतु विशुद्ध साहित्यिक प्रचार स्तरपर!) विज्ञापन, 'चतुरसेन' क़िस्मकी पत्रिकाएँ तथा उसी तरहकी अन्य सामग्री। पुरुषके स्पष्ट दृष्टिगोचर न होनेके कारण यह शून्य-पुरुषकी स्पष्ट प्रकृतिमें आता है।

● दूसरे प्रकारकी 'प्रथम-पुरुष'के अन्तर्गत आती है। इस कोटिमें वे लेखक आते हैं जो बहुत ही स्पष्ट रूपसे अपने विषयमें न केवल लिखते हैं वरन् घोषणाएँ करते हैं जैसे—'मैं चीन गया तो मुझे वहाँकी सरकारी साहित्यिक संस्थाकी ओरसे बृहत् भोज दिया गया।' 'इन पंक्तियोंके लेखकको बापूने इस पुस्तककी प्रशंसा करते हुए भूमिका लिखनेको कहा था', आदि। स्पष्ट ही इसमें हया नामक कुण्ठा कहीं दृष्टिगोचर नहीं होती, अतः यह कुंठामुक्त 'प्रथम-पुरुष'की कोटिमें आती है।

● 'मध्यम-पुरुष'की आत्मश्लाघा सदा अपनेसे ही अपनेको संबोधित कराती है जैसे 'तुम भी अश्क! क्या खूब लिखते हो।' 'वर्माजीने मारी लात!' यह आत्मश्लाघा पाठकोंकी ओरसे लिखी जाती है और पढ़नेवालेको मूर्ख बनानेके उद्देश्यसे की जाती है। चतुर आत्मश्लाघी वही होता है जो अपने बारेमें दूसरेसे वही कहलानेमें समर्थ हो जाता है जो वह कहलाना चाहता है। इसके लिए मध्यम-पुरुष ही सर्वोत्तम सिद्ध हुआ है।

● 'उत्तम-पुरुष'के अन्तर्गत आत्मश्लाघा करनेवालोंकी संख्या अनन्त है। लेखक स्वयं अपने बारेमें तटस्थ दृष्टिकोण रखनेका दावा करता है

और अपनी करनीको कथनीसे न्यायोचित ठहराता है। फिर उसे दूसरोंसे भी मनवाता है। वेदव्यास इस कलाके आचार्य थे, जिन्होंने महाभारत लिखते ही पहिला कार्य अपने आपको 'भगवान्' कहलाने और मनवाने-का किया। वाल्मीकिने अपनी ही कृतिमें अपना उल्लेख इस तरह किया है जैसे वे स्वयं अज्ञेय हों और रामायणके वाल्मीकि, वात्स्यायन। इसी परंपरामें श्री गिरिजाकुमार माथुरने 'नई कविता'के भविष्यपर बल देते हुए अपने विषयमें तटस्थ दृष्टिकोणसे बताया है कि 'नई कविता'में जितना कुछ भी अच्छा है उसके जनक श्री गिरिजाकुमार माथुर हैं! प्रभाकर माचवेके निबंधोंको तटस्थ दृष्टि देखते-देखते यदि हर पाठक उनके बारेमें तटस्थ दृष्टि रख सके तो उसकी बलिहारी जाइए। पर यह सभी दृष्टियाँ 'उत्तम-पुरुष'के अन्तर्गत आती हैं, अतः उत्तम हैं।

● आत्मश्लाघाका गर्हित रूप उसके चतुर्थ पुरुष वाली कोटिकी है! इसे करनेके आजकल कई उपाय हैं किन्तु उसका सरलतम रूप पत्र-पत्रिकाओंके छद्मनामोंवाले स्तम्भोंमें दिखाई पड़ता है। वही श्रीमान् जब छद्म नामसे साहित्यिक स्तम्भ लिखते हैं तो हर चौथी लाइनके बाद अपना नाम किसी-न-किसी प्रसंगमें अवश्य देते हैं! ऐसी गर्हित आत्मश्लाघाका भण्डाफोड़ दो प्रकारसे हो सकता है।

● सुधी पाठक जब एक ही नामको हर बार एक कालममें आता हुआ देखता है तो—!

● जब सम्पादक और छद्मनामी स्तम्भ-लेखकमें झगड़ा हो जाता है और दोनों एक दूसरेको भरपेट गाली देते हुए भण्डाफोड़ करने लगते हैं तो—!

सम्प्रति ईर्ष्यालु, मदी, मोही, मत्सरी, अविवेकी और खल लोग ही आत्मश्लाघाके विरोधी गुटमें हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे आत्मश्लाघाके विरोधी निम्न गुटोंमें बाँटे जा सकते हैं:

● सभी अखबार, पत्र-पत्रिकाओंके सम्पादक स्वयं अपनी प्रशंसा करना

चाहते हुए भी नहीं कर पाते, इस कारण लेखकोंके विरुद्ध रहते हैं—क्योंकि चतुर लेखक अपनी प्रशंसा किसी-न-किसी तरह घुमा-फिराकर कर ही ले जाता है!

● वे जो स्वयं आत्मश्लाघा पहिले ही कर चुके हैं पर जिनकी नोटिस किसीने नहीं ली। वे किसीकी आत्मश्लाघाको जनताकी नोटिसमें आते देख सबसे पहिले चिल्लाते हैं—'देखो वह बड़ा खराब है! वह आत्मश्लाघा कर रहा है! (अर्थात्—देखो, देखो मैं कितना अच्छा हूँ कि मैं आत्मश्लाघा नहीं कर रहा हूँ! इसलिए तुम सब लोग उसको बुरा मानो और मुझको अच्छा मानो!)

● कम्यूनिस्ट लेखक-जो आत्मश्लाघाका पूरा महत्त्व समझते हैं और इसीलिए हर दूसरे आत्मश्लाघा करनेवालोंको बुरा-भला कहते हैं-जब तक वह उनकी पार्टीका मेम्बर न हो जाय!

● वे सभी अज्ञानी मूढ़-जो अपनी सांस्कृतिक परम्पराको नहीं जानते और बतानेपर भी नहीं जानना चाहते हैं!! उन्हें हर चीज़में विदेशी झलक ही दिखाई पड़ती है। इस कारण सभी ऐसी वस्तुओंसे भड़कना उनका जन्मसिद्ध अधिकार है।

● अतः यह स्थापना सिद्ध हुई कि भारतीय साहित्यमें हास्यव्यंग्य-रचनाओंकी दृष्टिसे श्री केशवचन्द्र वर्मा ही सबसे महान् लेखक हैं। ऐसा चिंतक, विचारक और निर्भीक साहित्यकार न पहिले कभी हुआ है और न आगे कभी हो सकता है। इस स्थापनाको मान लेनेपर दो शिक्षाएँ मिलती हैं।

● आत्मश्लाघा सुनकर चौंकना-ईर्ष्या, मद, मोह, मत्सर, अविवेक तथा खलताका परिचायक होता है।

● केशवचन्द्र वर्माका कथन, यदि [illegible] मान गये हैं तो, अब चुपचाप मान लेना चाहिए।